

Brown Colour Book

TIGHT BINDING BOOK

Pages are missing

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178705

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMAN'A UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **483.1/169V** Accession No. **G.M.181**

Author **विजयवर्गीय रामगोपाल**

Title **विजयवर्गीय की कहानियाँ**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

विजयवर्गीय की कहानियाँ

राममोपाल विजयवर्गीय

प्रकाशक :—

विजयवर्गीय कला मण्डल

ठठेरी का रास्ता, जयपुर

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मुद्रक :—

राजस्थान प्रिंटिंग वर्क्स,

जयपुर

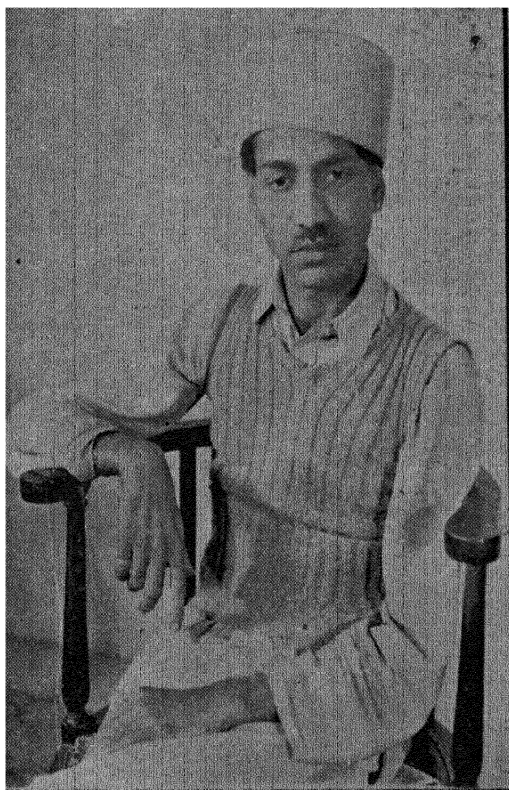
एक निवेदन

न तो मैं कहानी-कला में अपनेआप को प्रवीण मानता हूँ और न मैंने किसी वाद-विवाद को लेकर या नई-पुरानी धाराओं को समझ कर ये कहानियाँ लिखी हैं। केवल जीवन के कुछ रंग और कुछ ऐसी भावनाओं को लेकर शब्द-बद्ध कर दिया है जो बिना किसी प्रयत्न के न जाने कब कैसे आई और किस तरह इनका यह रूप बन गया मुझे स्वयम् आश्चर्य है। कहानी कला की दृष्टि से ये रचनाएँ उत्तम हैं या मध्यम इसका निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

जिन क्षणों ने मुझे कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया वे क्षण ऐसे ही थे जब प्रत्येक कलाकार की कला प्रकाश में आने के लिए छटपटाने लगती है। इस कहानी-संग्रह का नाम भी इसीलिए मैं न दे सका कि आखिर क्या दूँ सब ही नामों पर तो अधिकार किया जा चुका है। यदि भूल से कोई उच्छिष्ट नाम रख लिया गया तो मेरी कहानियों की मौलिकता को व्यर्थ शरमाना पड़ेगा। इसलिए मेरी कहानियाँ मेरे नाम से रहे यही उचित जान पड़ा। इन कहानियों की छपाई और गेट अप से मुझे स्वयम् को सन्तोष नहीं है तब औरों से क्या कहने का अधिकार रखता हूँ। यदि ये कहानियाँ पाठकों का कुछ भी मनोरंजन कर सकीं तो दूसरा संग्रह शीघ्र निकलेगा, ऐसी आशा है।

कहानी-सूची

१. यज्ञ की तस्वीर	...	...	१
२. दो घड़ी का साथी	...	...	११
३. नवाब साहब का बाग	...	...	२६
४. मेरी पत्नी	...	...	४२
५. प्रतिकूल मार्ग	...	...	५८
६. कलाकार	...	...	७३
७. दण्ड-व्यवस्था	...	...	७४
८. हमारा मकतब	...	...	६६
९. खुदा का इन्साफ	...	...	१२०
१०. दिल की मरजी	...	...	१३४
११. रानी	...	...	१६१
१२. रविवार की लुट्टी	...	...	१७२
१३. अपरिचित	...	...	१७६
१४. अन्तिम परीक्षा	...	...	१६६



यत्न की तस्वीर

चित्रकार—‘यह रेखा तो टेढ़ी खींची गई है।’

सुधा—‘तब ?’

चित्रकार—‘तब क्या, सीधी खींचो।’

सुधा—‘मुझे खींचना नहीं आता, आप खींच कर बता दें। यह तस्वीर तो खराब हो गई है। देखिए न, यत्न के हाथ कितने पतले बने हैं। मैं दूसरी तस्वीर बनाऊँगी।’

चित्रकार—‘अरे, इसका खराब क्या हुआ है ? यत्न के हाथ तो पतले ही बनने चाहिएँ, अपनी पत्नी के विरह में दुर्बल जो हो गया था !’

सुधा—‘फिर पाँव दुर्बल न होकर मोटे क्यों बने हैं ?’ यह कहते-कहते सुधा के अधर-सम्पुट किंचित् विकसित होकर फिर गंभीर हो गए। उसकी अंगुलियों में तूलिका गतिहीन हो कागज की छातीपर रुक गई। बोली—‘मैं नहीं बनाऊँगी।’

चित्रकार—‘बनाओगी क्यों नहीं ? गलत बनाते-बनाते ही तो सही बनने लगता है।’

सुधा—‘और शायद सही बनाते-बनाते ही गलत बनने लगता होगा. क्यों ?’

चित्रकार ने तरल हँसी हँसकर कहा—‘सुधा, तुम्हारे इन तर्कों के आगे तस्वीर के साथ-साथ मेरे हृदय में और भी न जाने क्या-क्या बन जाता है।’

सुधा—‘अच्छा, बताइये न, वह क्या-क्या बन जाता है ? बताइए।’

चित्रकार—‘क्या बताऊँ !’ एक दीर्घ निःश्वाम के साथ उसकी दृष्टि निकट की दीवार पर जा टकराई। वह भावनाओं में खोया हुआ-सा अपने-आप कहने लगा—‘या बताऊँ तुम्हें ?’ एक क्षण मौन रह कर उसने कहा—‘यत्न के हृदय की पीड़ा कितनी मर्मन्तिक, कितनी गहन थी, जब बाल गज-रूप धारण किए नील-काजल से काले आपाढ़ के बादल घिर आए थे, पपीहे की दर्दभरी पुकार से मेघों के उर पमीज उठे थे और वे शुष्क-दग्ध पृथ्वी के वक्षस्थल पर बरस पड़े थे, यत्न की आँखें भी बरस पड़ी थीं। उसकी पुष्पांजलि मानों स्वतः मेघों के ऊपर आ गिरी थी।’

सुधा—‘तब क्या हुआ था ?’

चित्रकार—‘तब कानिदास की कवित्व-धारा निर्वाच गति से सरिता-प्रवाह की तरह बह चली थी और कवि की अन्त-रात्मा ने ऐसा विरह-गान गाया था, जिमकी मादक भंकार आज भी पवन के मन्द स्वरों में करवटें ले रही है। उसके छन्दों में गुँथी हुई व्यथापूर्ण भावनाएँ आज भी संसार के प्रत्येक विरही के कलेजे में आग मुलगा देती हैं।’

सुधा--‘हूँ, ...लेकिन जब विरही लोगों के कलेजे में आग सुलग जाती है, तब वे मर क्यों नहीं जाते ?’

चित्रकार--‘हाँ, मर तो जाते ही हैं; पर दो घड़ी में फिर जी उठते हैं।’

सुधा--‘जी उठते हैं ! हमने तो आज तक किसी को मर-कर जी उठते नहीं देखा। कैसे जी उठते हैं न-जाने !’

चित्रकार--‘प्रेम का अमृत-पान जो कर लिया है विरहियों ने। वे मरने जैसी अवस्था अवश्य प्राप्त कर लेते हैं : किन्तु संसार के अनेक विरही जीवित हैं। यत्न भी जीवित है और रहेगा।’

सुधा--‘मैंने तो आज तक यत्न को देखा नहीं।’

चित्रकार--‘तुम्हारे अन्तर्चक्षुओं ने तो देखा है। यह तस्वीर साक्षी है, जो तुमने बनाई है।’

सुधा--‘हाँ, वह क्या-क्या बन जाता है, यह तो आपने बताया ही नहीं।’

चित्रकार--‘यह जान कर क्या करोगी ? न जानना ही अच्छा है। देखो, इस तस्वीर में सफेद में ज़रा पीला रंग मिला कर यत्न के शरीर का रंग बना देना। बादलों की रेखाएँ घूमती हुई--मी सरस बननी चाहिए। अच्छा, नमस्कार। कल तीन बजे आऊँगा।’

सुधा--‘पर सुनिए तो...देखिए, यह यत्न की तस्वीर है। इसके कलेजे में कहीं आग लग जायगी, तो हमारा तो घर ही

जल जायगा । मैं ऐसी तस्वीर नहीं बनाऊँगी ।'

चित्रकार हँस पड़ा । सुधा के मुख पर हास्य की रेखा प्रकट होकर उसके दोनों करतलों के बीच लुप गई ; किन्तु आँखों में मुक्त हास्य की चंचल लहरियाँ पलकों के किनारों तक आकर बिखर गईं । उमका मुख उदय होते हुए बाल सूर्य की भाँति आरक्त हो उठा । चित्रकार ने अपना हँसी दबाते हुए एक दृष्टि सुधा के मुख पर डाली, और वह चला गया ।

सुधा के सौन्दर्य की अ ह्लादमयी कान्ति, उज्ज्वल-मन्द-हास्य और गंभीर तर्कों की मर्म भावनाएँ चित्रकार के मस्तिष्क में घूम रही थीं । उमके कल्याण-संसार में एक नवीन रस-धारा का संचार हो रहा था । उनके दिवास्वप्नों में इस सरस अध्याय की पुनरावृत्तियाँ न-जाने क्या रहस्यमय सन्देश उमके श्रवण-पुटों में पहुँचा रही थीं । सुधा का मुख अनेक भावों को चित्रित किए उसकी आँखों के मम्मूख आ जाता, और वह निद्रा से चौंका हुआ-मा, कुछ सोचता हुआ-सा शून्य की ओर देखता और एक भूला हुआ-सा स्वप्न तथा कुछ खोई हुई भी स्मृतियाँ इकट्ठी हो जातीं । विरही यक्ष ने हाँ मानो कालिदास के अन्तर में कविता का रूप धारण कर लिया था । वह रस का स्रोत बन कर वह चली थी । पावसऋतु का अग्रदूत आषाढ़ का पहला बादल, विधि की प्रथम रचना, पक्व बिम्बाधरोष्ठी तन्वी श्यामा स्तोकनम्रास्तनाभ्यां यक्षपत्नी, विरहातुरा, उत्कण्ठता ! किन्तु विरही मर क्यों नहीं जाते ? उनके कलेजे में आग लगती है,

क्या इस तर्क में कोई सत्य है ? आग सुलगती है और.. !

हाय रे, यह चूल्हा तो जलता ही नहीं ! कल से चिल्ला रही हूँ, लकड़ी नहीं है, लकड़ी नहीं है । मैं क्या अपना सिर दे दूँ चूल्हे में ? न जाने क्या सोचते रहते हो । मैं कहती हूँ, पागल मत हो जाना थोड़े दिनों में । यह चूल्हा तो जलता ही नहीं है ।' चित्रकार की पत्नी ने पड्ज के स्वरों में अपनी वाक्य-धारा में चित्रकार को समाधि भंग करते हुए चूल्हे में फूँक लगाई । धुँएँ का बवण्डर-सा उठ कर घर के कोने-कोने में फैल गया ।

चित्रकार ने आँखें मलते हुए सोचा— विरही का हृदय जलता है और चूल्हा नहीं जलता ! इसमें कौन-सा तर्क है, कौन-सा सत्य है ? संसार में चूल्हा भी जलता है और विरह की आग भी जलती है । चूल्हे को विरह की आवश्यकता नहीं है, विरही को चूल्हे की आवश्यकता नहीं है । विस्तृत आकाश में मन्द गति में मृदंग-रव करता हुआ बादल, विद्युत् के प्रकाश में हंसती हुई पानी की शीतल बिन्दु-धाराएँ, पपीहे की दर्द-भरी पुकार, अपने चन्द्रवदनों से केश-राशि हटाकर बादलों को देखती हुई विरहिणी पथिक-वनिताएँ, जामुन के कुंजों में अठ-खेलियाँ करती हुई रेवा नदी की चंचल धारा, मृगों के वृन्द, पुष्पों के मकरन्द..... ! लेकिन लकड़ियाँ नहीं हैं, चूल्हा नहीं जलता, मैं क्या अपना सिर दे दूँ चूल्हे में ! दोनों में सत्य क्या है ? शायद न यह असत्य है और न वह, या दोनों असत्य हैं । कौन जाने...!

सुधाने तस्वीर सामने रखते हुए कहा—‘देखिए, रंग लगा लिए हैं—यह पीला, यह लाल, यह बादलों में घूमती हुई रेखाएँ, यह चातक...।’

चित्रकार—‘अरे, इसकी छाती पर यह लाल रंग क्यों लगा दिया है ? तुमने तो इसे खराब कर दिया ।’

सुधा—‘आप भी भूल जाते हैं ! आप ही ने तो कहा था, विरहियों के अन्तर में आग सुलगती रहती है । मैंने आग का लाल रंग बनाया है । कलेजे की आग है यह ।’ सुधा के अधरों पर हँसी उतर आई और उसकी उज्ज्वल दन्त-पंक्तियाँ मुक्ता-कलाप की तरह चमक उठीं ।

चित्रकार ने हँसने के लिए आगे बढ़ती हुई मुग्ध की रेखा को आँखों में उतारते हुए कहा—‘अच्छो ! तुम्हें लाल रंग लगाने ही से सन्तोष हो गया ! मेरा तो विचार था कि जहाँ आग दिखलानी है, इसका वह स्थान दियासलाई से जला दोगी, तब यह चित्र निःसन्देह अद्वितीय समझा जायगा ।’

नतमस्तक सुधा ने कहा—‘आप ही ने तो कहा था । लाइए फिर लाल रंग मिटा दें ।’

चित्रकार—‘मिटाने को तो मैंने कहा नहीं, जलाने को कहा है ।’

सुधा—‘आपका मतलब है, सारी तस्वीर जला दें ।’

चित्रकार—‘यदि ऐसा ही करना है, तो यह भी कर लो । कोई अरमान बाकी न रह जाय । इस तस्वीर की भस्मी बनाकर

एक पुड़िया में रख लेना !'

मुधा—'और फिर किमी विरही को इसकी कुछ मात्रा आग ठण्डी करने के लिए दे दूँ, क्योंकि विपश्य विपमौपधम् शास्त्र का मत है !'

चित्रकार की हंसी होठों से बाहर निकल पड़ी। मुधा ने अपनी भौंहों को जरा टेढ़ा करके मन्द मुस्कान बिखेरते हुए अपना मिर झुका लिया। तूलिका उसके हाथ में खड़ी कुछ प्रतीक्षा करने लगी। चित्रकार ने उत्फुल्ल कमल-दल के समान मुधा के मुख की ओर देखा, जो आयु की प्रथम किरणमालाओं से आरंजित था। वह भावनाओं में बह गया, कल्पनाओं में उड़ गया और स्वप्नों में खो गया।

मुधा—'आप क्या सोच रहे हैं, बताइए न ? अब तस्वीर में क्या करना है ?'

चित्रकार—'जो बताया है, वही करो। सोचना क्या है ?'

मुधा—'क्या बताया है ?'

चित्रकार—'यही कि तस्वीर की भस्म बना लो और उसे पुड़ियों में बाँध कर नाम रख लो—विरहान्तक भस्म !'

मुधा—'पहले कोई औपधालय तो खोलिए !'

चित्रकार—'लेकिन भस्म तुम्हें देनी होगी।'

मुधा—'और विरही आपको बनना पड़ेगा।'

हँसी के उज्ज्वल प्रकाश से कमरा आलोकित और ध्वनित हो उठा। चित्र की रेखाएँ खींची गईं और कुछ रंग भरा गया।

सुधा ने नतमस्तक हो कहा—‘आपने बताया नहीं, वह बन क्या-क्या जाता है ?’

चित्रकार—‘यह तुम्हें बताने की बात नहीं है, सुधा ! सभी बातें बताई नहीं, केवल अनुभव की जाती हैं । अच्छा, तो नमस्कार’ कह कर वह चला गया ।

— ३ —

समय निकलते देर नहीं लगती । दस वर्ष अनेक घड़ियों और दिवसों की रचना करते निकल गए । आँखों पर चश्मा चढ़ाए दफ्तर से वकील साहब लौटे । हैट उतारकर मेज पर रख दिया और एक निश्वास छोड़ कर नौकर को पानी लाने की आज्ञा दी । दोनों दृष्टे वकील साहब से आ लिपटे । पनी पीकर उन्होंने कहा—‘सुधा, जरा चाय का प्रबन्ध जल्दी करवा दो । मुझे एक आवश्यक काम से बाहर जाना है । नौकर से कह दो, गाड़ी तैयार रखने को ड्राइवर से कह दे । मैं दो घण्टे बाद जाऊँगा ।’

पत्नी चाय का प्रबन्ध करने चली । घर की चीजों की एक सूची भी चाय के साथ उमने उनके सामने रख दी । उन्होंने चाय पीते हुए उसे पढ़ा और फिर पलंग पर जा लेते । सामने दीवार पर विरही यक्ष का चित्र टँगा था—आषाढ़ के बादल और यक्ष की पुष्पाञ्जलि, अश्रु-विसर्जन और विरह-निवेदन । उनकी दृष्टि चित्र पर जा अटकी । एक बार फिर कुछ सोचा, ये जज लोग

भी बड़े विचित्र हैं ! कितना उलझा हुआ मुकदमा और मेरे विपत्ती वकील की बहस ! आखिर आदमी का दिमाग है, यह भी लोग नहीं सोचते !

सुधा की गोद में एक बच्चा था, वह कुरसी खिसकाकर वकील लाहब के पलंग के निकट ही बैठ गई । उन्होंने कहा— 'सुधा, यह तस्वीर क्या है? इसे शायद तुम्हींने बनाया है । यह कवि लोग भी बड़े सनकी होते हैं, ज़मीन-आसमान के छोर मिलाया करते हैं ! और इन जजों को क्या कहा जाय ? कुछ सोचें, तब तो । हाँ, तो यह तस्वीर क्या है, किसकी बनाई है ? शायद कोई आदमी बैठा है और कुछ काले-काले धब्बे-से हैं ! अच्छी है । बनाई तो खूब है !'

सुधा — यह यत्न की तस्वीर है । बादलों से सन्देश कह रहा है । वह रामगिरि पर्वत... !'

वकील—'हाँ, देखो, ज़रा मेरी काराजों की फाइल उठा दो । नौकरों की तनख्वाह दे दी या अभी देनी है ? बच्चों के फराक का कपड़ा मँगवालेना या मैं ही लेता आऊँगा ? चीनी तो अभी होगी ही ? यह कण्ट्रोल भी सरकार ने क्या लगा दिया है ! हाँ, तो यह यत्न की तस्वीर है और ये बादल हैं ! कल्पना तो अच्छी है ! और देखो, वह पलंग की चादर धोबी को दे देना । कम्बख्त हफ्ते-भर तक धोकर नहीं देता । हमारे कोर्ट का भी यही हाल है । एक काराज के लिए महीनों लग जाते हैं ।'

। एक बच्चा सीढ़ी से लुढ़क गया । उसकी रुदन-ध्वनि से कमरा गूँज उठा । सुधा ने बच्चे को शान्त किया । नौकरानी ने चाय का एक प्याला तोड़ दिया । नौकर भी बड़े दुष्ट होते हैं, उन्हें क्या मालूम कि आजकल चीजें पैसे देने पर भी नहीं मिलती !

वकील साहब की आँख लग गई । बच्चे खेलने लगे । सुधा ने तस्वीर की ओर देखा और एक क्षण सोचा—ये धब्बे-से तस्वीर में क्या हैं ? किसकी तस्वीर है ? नौकरानी ने आकर कहा—‘बहूजी, लकड़ियां नहीं हैं, मँगवा लेती हूँ, दो रुपए दे दीजिए ।’ सुधा ने दो रुपए निकाल कर दे दिए । यत्न की तस्वीर पर उसकी दृष्टि फिर जा रुकी । वह एक निःश्वास छोड़ कर देर तक न जाने क्या सोचती रही । वकील साहब ने जग कर घड़ी की ओर देखा और कहा—‘एक गिलास पानी । ये नौकर भी किसी काम के नहीं । कहा जाता है, तभी कोई काम करते हैं, घोर कहीं के !’ नौकरानी चिल्लाई—‘बहूजी, चूल्हा नहीं जलता, मेहरा गीली लकड़ी ले आया है । ड्राईवर ने आकर कहा—‘सरकार, गाड़ी तैयार है ।’ एक बच्चे ने आकर कहा—‘बाबूजी हमें खिलौना चाहिए, कल भी नहीं लाए !, एक चपरामी आया और एक काराज देकर चला गया । एक खोम्बे वाला सड़क पर चिल्ला रहा था—‘दही की चाट, पत्ते की चाट, अँगुली की चाट, यह बारह मसाले की चाट !’

सुधाने देखा. वह तस्वीर ही एक मौन है—शायद वह भी

कहती है : विरहियों के हृदय में आग जलती है। सभी बातें बताई नहीं, केवल अनुभव की जाती हैं।

एक दबी हुई स्मृति जाग पड़ी।



∴ २ ∴

दो घड़ी का साथी

जेठ के महीने की तपती हुई दोपहरी की ज्वालाएँ अपनी जीभ लपलपा रही थीं। लू के गरम झोंके घरों की दीवारों और छप्परों को झुलसाते हुए आते और निकल जाते थे। मौन-स्तब्ध वातावरण को चीरता हुआ किसी चील का चिल-लि-लि शब्द ऊँचे आकाश में सुनाई पड़ जाता। रास्ते की धूल भटका हुई-सी कभी इस घर में और कभी उस घर में घुमती फिरती थी। सामने वाले उस बड़े से घर में एक घोड़ा बंधा हुआ था, पीले रंग का, छोटा कद दुर्बल-सा। वह हिनहिनायाँ, आँखें खोल कर चारों ओर उसने परिस्थिति का निरीक्षण किया; गरदन और पूँछ को फटकारा; फिर आँखें बन्द करके झपकियाँ लेने लगा।

मक्खियों की एक जमात-सी उसके चारों ओर मँडरा रही थी। कभी वे उसकी कटी हुई पीठ पर हमला कर देतीं, कभी कानों में

घुस पड़तीं, कभी पूँछ पर झूल जातीं। घोड़ा उनका विरोध करता हुआ अपनी लम्बी पूँछ कभी पीठ पर फटकार देता, कभी कान फड़फड़ाता, पर उसके सभी प्रयत्न निष्फल रहते। मक्खियाँ उसे तज्ञ करने के लिए अधिक उत्साह से पुनः झपट पड़तीं। घोड़े की आँखें खुल जातीं और वह सूखे घास के कुछ तिनके होठों के सहारे चीनने लगता। उसके अगाल आँखों तक लटक रहे थे। पैदाइश उसकी अवश्य असली घोड़े से थी, पर जब वह नज़्दी पीठ और बे-लगाम के रहता तो गधे का सम्बन्धी ही दिखाई पड़ता था।

धूप बढ़ती हुई उसकी टाँगों के ऊपर तक चली आ रही थी। जलती हुई टाँगों को उसने कभी आगे और कभी पीछे फेंका, पर जाता कहां ! वहीं तो थोड़ा सा स्थान था, जिसमें छप्पर की छाया खुली धूप का मुकाबला कर रही थी। उस पर घोड़ा आगे-पीछे दोनों ओर से बंधा था।

खरखर खुद, खरखर, खुद की मन्दध्वनि वायु में सरसराई ! एक बूढ़ा बैल पैर घसीटता हुआ उधर आ रहा था—रास्ते की धूल का गुब्बार उड़ाता हुआ ! खुद उसके ढीले पड़ गये थे, एक मींग टूटकर लटक चुका था। कण्ठ के नीचे की खाल झुर्रियों से सिकुड़ी हुई टाँगों तक झूल रही थी। आँखों से पानी और मुँह से लार टपक रही थी। पीठ की हड्डियाँ एक-एक निकली हुई थीं और शरीर के रोम प्रायः उड़ गए थे। कन्धा कटा हुआ था और नाथ टूटी हुई। वह लटकता-सा झूलता

सा चला आ रहा था। कभी कोई मूखा तिनका दिख जाता तो उठा लेंता। कुछ चबा जाता, कुछ वापस गिरा देता। किसी दीवार की छाया दिखता तो एक क्षण ठहर जाता, फिर चल पड़ता। वह उस घर की ओर आया, जिसमें घोड़ा बंधा था। वह घर में जा घुसा। एक दृष्टि चारों ओर सिग उठा कर फेंकी धूप ही धूप बिखरी हुई थी—जलती हुई, तपती हुई। घोड़े के सामने घास के तिनके बिखरे हुए देख कर वह घोड़े के पास आ खड़ा हुआ, नतदृष्टि, मुँहे हुए कन्धों से। उसने न तो घोड़े को कुछ संकेत किया, न कोई सम्मान दिखाया। दो तीन तिनके बीने और चबा लिये।

इस धृष्टता का घोड़े ने भी कोई विरोध नहीं किया। वह ऊँघता रहा। बैल ने देखा, कुछ छाया है। ठंडक सी उस के शरीर में आई। घोड़े के निकट ही लम्बी साँस छोड़कर बैठ गया, पमरता हुआ, नथुने फुलाता हुआ। पूंछ में एक बार मक्खियों को हटाया। पीठ की खाल को थरथरा कर फिर साँस छोड़ी। उसने कुछ शांति का, सुख का, अनुभव किया। पलकें गिराकर मौन हो गया।

घोड़े ने आगन्तक के इस व्यवहार पर दृष्टिपात तक नहीं किया; कब उसने उसके स्थान पर अधिकार किया, कब तिनके बीने। वह ऊँघता रहा। बैल आँखें नत किए ही कुछ गहन विचारों में डूब गया। आँखों की पुतलियाँ ऊपर को चढ़ गईं। कान लटक गये। मक्खियाँ कुछ बैल की पीठ पर आनन्द-उत्सव मना

रहीं थीं और कुछ घोड़े की पूंछ पर ।

सन्नाटा था । छप्पर के तिनके हवा के झोंकों से सरसराते और चुप होजाते । कुछ क्षण बीत गए । घोड़े ने आँखें खोलीं और बंद करलीं । बैल ने आँखें खोलीं, फिर बंद करली ।

एक कौआ उड़ता हुआ आया । गोल आँखें इधर से उधर घुमाकर बैल की पीठ पर जा बैठा । बैल ने प्रतिवाद किया । वह घोड़े पर जा बैठा । चोंच खुट से उसकी पीठ पर मारी, घोड़ा जाग पड़ा । अपनी पीठ और अयालों को फड़फड़ाया । कौआ फिर से उचक कर बैल पर बैठ गया । उसके कानों में एक चोंच मारी और कांव-कांव करता हुआ छप्पर के ऊपर जा बैठा ।

बैल और घोड़ा दोनों की नींद उड़ गई थी । घोड़े ने कुछ तिनके मुँह में लिए । बैल ने अपना एक पैर लम्बा किया । धूप सरकती हुई बैल की पीठ पर और घोड़े की गरदन तक आ पहुँची थी । जल उठा था घोड़ा । बचा हुआ स्थान आगन्तुक अतिथि रोके बैठा था । अब घोड़े का धैर्य जाता रहा । वह बोला, 'चचा, मेरे सिर पर धूप आ गई है, जरा हट जाते ।' बैल मौन रहा । कुछ न बोला । घोड़े ने फिर अपनी साङ्केतिक भाषा में कहा, 'बैल चचा ! जरा हट कर बैठो, मैं जल रहा हूँ । जरा-सी छाया थी, वही तुमने आकर घेर ली ।'

बैल ने अधखुली आँखों से दृष्टि झुकाए हुए ही कहा, 'मैं तो, बैठ गया हूँ, बेटा, उठना मेरे लिए बड़ी कठिनाई है ! देखते

नहीं, मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। मुझमें उठने तक की शक्ति नहीं है। तुम तो अभी जवान हो, जब तुम्हारी उम्र थी, तो दिन भर ऐसी धूप की परवाह न करता था।’

घोड़े ने कहा, ‘चचा, ठीक है। पर मेरी अवस्था को देखो। मोटी रस्सियों से बँधा हूँ। उस पर यह धूप! मक्खियाँ अलग खाए जाती हैं। तुम हट जाते तो अपनी गरदन छाया में कर लेता।’

बैल एक क्षण चुप रहा। फिर बोला, ‘बेटा मैं विवश हूँ, दिन भर फिरता-फिरता थक गया हूँ। उस पर यह जलती हुई धूप! खाने को तीन-चार रोज से कुछ नहीं मिलता है। पानी अवश्य कल एक नाली में पी लिया था—मैला और दुर्गन्ध से भरा! पर क्या करता।’

घोड़े ने कहा, ‘चचा, तुम्हारा मालिक बड़ा बेदर्द जान पड़ता है। तुम्हें खाना भी नहीं देता, पानी नहीं पिलाता, कैसा निर्दय है?’

बैल एक सांस छोड़ कर बोला, हाँ बेटा, तुम सच ही कहते हो, पर सब ही मालिक तो प्रायः ऐसे होते हैं। अब मुझ से काम नहीं होता। न मैं हल में जोता जा सकता हूँ न गाड़ी खींच सकता हूँ, न और कोई काम दे सकता हूँ। मेरे पैरों और कन्धों ने जवाब दे दिया है। वे अब कुछ करने के योग्य नहीं रहे। जब से मालिक ने मुझे निकाला है, यों ही भूखा मरता हूँ; प्यासा रहता हूँ; न बैठने को स्थान, न खड़ा रहने को

ठिकाना । मार भी देते हैं लोग मुझे ! परसों ही की बात है, एक आदमी ने मेरी पीठ पर ऐसा लाठी का प्रहार किया कि हड्डियाँ चटख गईं । मेरा कोई अपराध नहीं था । उसकी गाय के पास से दो-चार तिनके मुँह में ले लेना चाहता था । बस, भूखा था मैं ! एक जवान बछड़े ने सींग मार दिया मेरे पेट में, अपनी जवानी पर इतराकर ! क्या करता ! बल होता तो सिर तोड़ कर रख देता ! पर सहना पड़ा सब कुछ ! बुढ़ापा है, बेटा । बहुत बुरा है यह । विपत्तियाँ, अपमान, प्रतिदिन सहने को मिलते हैं । जाड़े का शीत, बरसात के ओले, गरमी की लू, क्या नहीं सताते । न पूछो, बेटा । बड़ा दुखी हूँ मैं !

घोड़े ने कहा, चचा ! घास के तिनकों की तो कोई बात नहीं, मेरे पास से खा जाया करो, जब तुम्हारी इच्छा हो । मेरा मालिक इतना बुरा नहीं है । पानी भी पी लिया करो, मेरे हिस्से का । चचा मैंने भी बहुत दुःख सहें हैं । मालूम है मुझे भूख की घड़ियाँ, प्यास की तकलीफ; थकान की पीड़ा; मैं तुम से कुछ नहीं कहता, चचा ! पर यह धूप मेरे सिर पर ही आ गई थी । बैठे रहो, चचा; सचमुच तुम बूढ़े हो; थक गए हो; शक्ति नहीं है तुम्हारे पैरों में; ये आदमी बड़े दुष्ट होते हैं, चचा ! बुरी है इनकी जाति; ये पराई पीड़ा को नहीं समझते; पराये दुःख पर दृष्टिपात नहीं करते । अपना ही स्वार्थ, अपना ही सुख चाहते हैं । कड़ी मेहनत लेकर हम लोगों को खाने भर को देते हैं । वह भी पूरा नहीं । मेरा मालिक तो बुरा नहीं है, चचा ।

काम भी कम लेता है, मारता भी नहीं अधिक । मुझे दुःख है तो यह कि धूप में जलता रहता हूँ । वह नहीं जानता कि मुझे भी धूप लगता है । मेरे भी प्राण हैं ।’

वैल ने कहा, ‘अरे बेटा, आदमी कभी भले नहीं होते । ये स्वार्थ के सङ्गी हैं । जब तुम बूढ़े हो जाओगे तुम्हारा भी मालिक तुम्हें घर से निकाल देगा । जब तक जवान हो, तुम्हारा आदर है । मैंने क्या अपने स्वामी की कम सेवाएँ की हैं । सारी जवानी हल में जुता; कड़ी धूप सही; वज्र-सी कठोर धरती को उखाड़ फेंकता था । बल था, बेटा, उस समय मेरे कन्धों में ! मेरी जवानी—मत पूछ बेटा, मेरे सींगों के सामने अच्छे-अच्छे लड़ैत वैल हार मान लेते थे । मैं सुन्दर भी कम नहीं था । जब मैं कन्धा उठा कर चलता था, मेरे गले के घूँघर झनझनाकर बज उठते थे । कैसी मस्त चाल थी मेरी ! मेरा मालिक मुझे देख कर प्रसन्न हो जाता था । अभिमान करता था मुझ पर !

‘...हाय वे दिन !’ जवानी थी, बेटा; उस लाल गाय से मेरा प्रेम हो गया था । ओह कैसे थे उसके सुन्दर नुकीले सींग, भरी हुई देह, मक्खन-सी चिकनी, गोल पुट्टे, जमीन तक घिस-टती हुई पूँछ, समान खुर नीले—चमकते-से, उसकी आँखों में जवानी उमड़ी रहती थी, बेटा । सिर पर सफेद टीका, खड़े कान, सुडौल कन्धे, घूमती हुई चाल; वह लाल गाय भी मुझसे प्रेम करती थी । हम एक ही थान में बँधते थे । मैं संध्या के धुंधले प्रकाश में कड़ी मेहनत करके कन्धा उठाए उत्साह-भरे

हृदय से, आशा-भरी उमङ्गों से, धड़कते हुए कलेजे से, प्रतीक्षा-भरी आँखों से, घर लौटता । वह गाय मेरी प्रतीक्षा के क्षण गिनती रहती । उसकी दृष्टि मेरे मार्ग में बिछी रहती । मेरे घुँघरुओं की झन्कार सुनते ही वह गद्गद कण्ठ से बोल उठती—चकित-सी, उत्सुक-सी । उसके दोनों सींग गोल महाराज की तरह सिर पर उठे हुए दिखलाई पड़ते । वह चौकन्ने कान किए रहती । मैं आता सारी थकान, सारी मेहनत, भूल जाता । क्षण में प्रेम-भरे गीत मेरे कण्ठों में गूँजने लगते । आँखों में मिलन की मदिरा का नगा छा जाता । रात के अँधेरे में अपनी-अपनी बीबी गुनाने, हृदय की भावनाओं के उद्गार प्रकट करते । कैसा था वह आनन्द ।

वैल कुछ चुप सा हो गया, फिर बोला, 'मेरी बेजोड़ जवानी थी, बेटा ! मोटे-मोटे रस्से तोड़ देता था । पृथ्वी की कड़ी मिट्टी सींगों पर उछाल देता था । किसी अभिमानी बछड़े से मैंने लड़ कर हार नहीं खाई । एक बार तेरी चाची—उम लाल गाय—के सामने ही मैंने एक अभिमानी वैल को मारते-मारते अधमरा कर दिया था । विजयोत्सव से मैंने हँकार भरी । अनेक गाँव सुन्ध हो गई मेरे बल पर, मेरे इन सींगों पर, जो आज मेरे सिर पर टूट कर लटक गये हैं । और बेटा.....'

वैल को खाँसी चली और साँस बढ़ गई । वह कुछ क्षण मौन रहा । फिर कहने लगा—“हाँ तो, बेटा, मुझे साँस चढ़ गई है.....” वह लाल गाय आज भी मुझे याद आ जाती है ।

कलेजा बैठ जाता है। हृदय आहत-मा तड़पने लगता है।

वे दिन सुख से बीत रहे थे। एक दिन जब खेत से वापस लौटा तो देखता हूँ मेरी प्रियतमा वह लाल गाय वहाँ नहीं हैं। साथिया से पूछा एक ने मेरी हँसो उड़ाई। दूसरे ने मुँह बिचकाया। एक गाय ने आँख मार दी, वह जलती थी हमारे प्रेम से। एक साथी ने कहा, 'भैया, वह तो बेच डाली गई किसी के हाथों। आज ही उसे एक आदमी बाँध कर ले गया है। जाते समय वह रो पड़ी थी, पर विवश थी बिचारी। बड़ी कीमत मिली है उसकी।'।

"मैं मुन्न रह गया। पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। संसार सूना दिखाई पड़ा। मालिक पर क्रोध आया, पर करता भी क्या। मैंने चारा नहीं खाया उस दिन पानी भी नहीं पिया। मौन खड़ा रहा। सारी रात उसकी याद सताती रही। कहाँ होगी वह! उसे मेरे बिना चैन न होगा। हाय रे दुष्ट! क्यों बेच डाला मेरी प्रियतमा को। न जाने किसके हाथों पड़ी होगी! क्या होगा उसका! मेरी दुनियाँ उजड़ गई! मेरी आँखों में आँसू उतर आए। रोता रहा दिन भर! मैंने मार सह ली पर काम नहीं किया। मैं निर्जीव-सा हो गया पर चारा नहीं खाया। मेरे अनशन से मालिक घबरा उठा। उसने मुझे बीमार समझ लिया। मेरी आन्तरिक वेदना को क्या जानता वह निर्दयी! यह मनुष्य-जाति क्या जाने किसी के हृदय को पीड़ा! बेटा, ये मानव बड़े बुरे होते हैं। अत्याचार करना

निर्बलों पर, यही इनका ज्ञान है। बीमार मैं नहीं था, पर अन्तर की ज्वाला ने मुझे जला डाला था। उसका विरह असह्य हो गया मेरे लिए।

“एक दिन क्रोध में आकर मालिक ने मुझे मारा और एक तेली के हाथों मुझे बेच दिया। मेरा साथी दूसरा बैल बहुत दुःखी हुआ मेरी बिदा के समय। हम रो पड़े। उस गाय का भी गला भर आया जो हमारे प्रेम पर जलती थी। वह घर, वह साथियों का समुदाय, मुझे छोड़ना पड़ा। तेली मुझे बाँध कर ले आया। मैंने कोई विरोध न किया। जीवन में रक्खा ही क्या था? जैसा यह घर सूना था मेरे लिए, वैसा ही आने वाला घर ! साथियों की याद अवश्य सताती थी, पर मन को मारकर रह जाता था मैं।

“तेली ने कोल्हू में मुझे जोता। आँख पर पट्टी बाँध दी। दिन भर घूमता रहता कोल्हू के चारों ओर ! हृदय में उसकी याद लिए, उसकी विरह-वेदना में विकल-सा, खोया हुआ-सा। उजड़ा दिल था। हाय बेटा, बुरी होती है जुदाई—मिल के बिछुड़ जाना, किसी को दिल दे देना, प्रेम की ज्वाला में जल उठना; यह आँखों का भौदा है, बेटा। बड़ा महंगा, बड़ा मुश्किल ! उसकी याद कितनी मीठी, कितनी प्यारी, आज भी मेरे अन्तर के किमी कोने में छिपी पड़ी है। एक हूक-सी उठती है और आह बन कर निकल जाती है।”

घोड़ा मनोयोग से सुन रहा था। उसका भी गला भर

आया, बैल की बीती हुई बातों को सुनकर घोड़े ने कहा, 'चचा' मच कहते हो । दिल लगाना घुरा होता है । न लगे किसी दुश्मन का भी दिल किमी से । कैसी पीड़ा होती है, दिल में कोई चुट-कियाँ भरता है ।' घोड़े ने एक ठण्डी माँस भरी । उसके नथुने फूल उठे ।

बैल ने कहा— 'बेटा, क्या तूने भी किसी से प्रेम किया है ?'

घोड़ा मौन रहा; कुछ क्षण कुछ न बोला । वह विचारों में डूब गया था । अतीत की स्मृतियाँ घूम गईं उसके मस्तिष्क में । चौंक कर बोला— 'क्या कहा था चचा तुमने ?'

बैल ने कहा, बेटा, कुछ नहीं । पृष्ठ रहा था, क्या तुमने भी किसी से प्रेम किया है ?'

घोड़े ने हिनहिनाकर अपनी मौन-भाषा में कहा - 'अरे चचा, तुम्हारी बिना देखी जवानी की सौगन्ध खाता हूँ । मैंने भी किसी को दिल दिया है, प्रेम किया है । चचा, वे दिन याद हैं मुझे !.....

"सावन की घनघोर घटाएँ आसमान में छा रही थीं । बिजलियाँ चमक-चमक जाती थीं । आँधेरा बिखरा जाता था पृथ्वी पर । ठण्डी हवा शरीर को पुलकित किए देती थी । रोम-रोम में जवानी की उमङ्गें फूटी पड़ती थीं । मैंने पाँव की रस्सी को एक ही झटके में तोड़ दिया । मस्ती से लाल हो गई मेरी आँखें । मैं मालिक की नजर बचा कर भाग चला । बन्धनों से

मुक्त हो कर—जङ्गल के खुले मैदाना में।

“बादल गरज-गरज उठथे थे। चारों ओर भूमि पर हरि-याली बिछी थी। वृक्ष एक दूसरे से लिपटे जाते थे। फूलों की हँसी दवाए नहीं दबती थी। प्रसन्नता से मेरा अन्तर नाच उठा। संसार में कितना आनन्द है पहली बार अनुभव किया। मैंने छल्लों में भरीं; हरी-हरी पृथिवी पर लोटा; फूलों की महक सूँघी; हवा की ठण्ठक को स्पर्श किया! सचमुच, चचा, बड़ा आनन्द आया उस दिन। मैं बहुत आगे निकल गया था; जहाँ चिड़ियों की चहक थी; भींगुरों का झन्कार था; वृक्षों की जवानी पत्ता पर करवटें ले रहीं थी; घनी सघन झाड़ियाँ—पथ न कोई पान्थ! आदमी की आँखों से दूर! मैं आकाश की ओर सिर उठाए उन्मत्ता-मा, नशे में चूर—सा यह प्राकृतिक छटा देख रहा था कि सहसा मेरे एक सजातीय की हिनहिनाहट सुनाई पड़ी। मधुर था वह स्वर! मैं उसका अनुसरण करता वहाँ तक जा पहुँचा। मैंने देखा एक स्वच्छ सफेद बादल के टुकड़े जैसी जवानी के बोझ से अलमाई हुई—सी एक घोड़ी खड़ी थी। मस्ती थी उसकी आँखों में। मुझे देख कर हमी उतर आई उसकी आँखों में। अपनी दोनों कनौतियाँ खड़ी करके मुझे एकटक देखने लगी! एक वायु का झोंका चुटकी लेकर निकल गया मेरे अङ्गों में। बिजली ने चमक कर लज्जा से बादलों में मुख छिपा लिया। समीप की झाड़ी में एक फूल ठहाका मार कर हँस पड़ा। एक तितली अपने पङ्खों के रङ्ग बखेरती हुई हवा

में थिरक रही थी। बादल अब भी रह-रह कर गरज उठता था। घचा, चाँदी के तारों जैसे अयाल थे उमके, जो आँखों पर लटक-लटक आते थे। रेशम-सी देह, घनी पूँछ। मन्ध्या का अन्धकार बढ़ता आ रहा था। दिन के ऊपर रात छा गई—घोर काली—काजल-सी। चप्रक जाती थी बिजलियाँ कभी-कभी ! भींगुरों की झन्कार; आग की चिनगारियों—मे जुगन् अँधेरे में झलमला रहे थे। ठण्ठक बरसती थी हवा में ! हम दोनों एक पेड़ के नीचे चले गए। उसने अपना और मैंने अपना पगिचय एक दूसरे को दिया। कभी न बिछुड़ने की कसम खाई।

“हमने निश्चय कर लिया कि एकान्त जङ्गल में घूमेंगे, झरनों का जल पिएँगे, कोकिलों के गाने सुनेंगे, फूलों की मुन्द-रता देखेंगे, स्वर्ग है हमारे लिए यह वन; कौन है जो हमारे प्रेम में बाध डाले; कौन है जो हम पर दृष्टिपात करे; हम आनन्द-धिभोर, मे-सुरा में लीन थे। वह बोली, ‘मुझे डर लगता है, कैसी अँधेरी रात है’ मैंने कहा, ‘पगली, मैं जो तुम्हारे साथ हूँ, डर काहे का?’ रात ओस से भागी जा रही थी। एक लता किसी वृक्ष के गले से लिपट कर मुस्करा रहा थी, एक चिड़िया अपने प्रेमी से रूठ कर दूसरी शाखा पर जा बैठी ! हम मिलन के आनन्द-मागर में डूबे थे। एक ही झपकी में प्रभात ने आँखें खोल दीं। वृक्ष अँगड़ाई लेकर जाग पड़े। चिड़ियों के दल-के-दल ऊँचे हवा में उड़ रहे थे। कलियों ने अबगुण्ठन खोल दिया। पराग से दिशाएँ धूमिल पड़ गई ! प्रभात-किरणों के अधर

हँसने के लिए फड़क रहे थे ।

“हमने भरने का शीतल जल पिया । हरी घाम चरी । किलोलें को । आँख-मिचौनी खेली । दौड़ लगाई फिर लोट गए पृथ्वी के कोमल हृदय पर ! दिन चढ़ रहा था । एक आशङ्का मे मेरा हृदय काँप उठा । मेरी प्रियतमा ने कहा, ‘चुप क्यों’ हो जी ? क्या चिन्ता हो गई तुम्हें ? बोलते क्यों नहीं ? मैंने कहा ‘क्या कहूँ, एक डर है. एक विपत्ति है । मालिक मुझे खोजता यहाँ आ गया तब क्या होगा ? हाय राम, मुझे वह पकड़ कर.....

“वह बोली, ‘जाने भी दो दुष्ट को, मैं तुम्हें कहीं न जाने दूँगी । हम यहीं रहेंगे आजन्म ।’ वह पुलकित-सी मेरी पीठ पर गरदन रक्खे निमीलित नेत्रों से स्पर्श-मुख का आनन्द लेने लगी । मैं भी प्रेम की मादकता से भ्रूम उठा । आनन्द मेरे पैरों में लोट रहा था, स्वतन्त्रता मेरे सम्मुख नतमस्तक खड़ी थी । पास वाले कुञ्ज में एक मोर नाच रहा था । मोरनी देख रही थी उसकी छटा । सहसा मोर पर समेट कर भागा । मोरना भी डरी-सी उसके पीछे दौड़ी । मेरा हृदय काँप गया । पैरों की आहट थी—मनुष्य का पदचाप ! मैंने भय से आँखें घुमा कर देखा । चक्कर आ गया मुझे । मेरा मालिक हाथ में डण्डा और रस्सा लिए आ रहा था । लाल थीं उसकी आँखें । क्रोध था उसके मुख पर । मैंने कहा, ‘प्रिये भाग चलें; मेरा मालिक है । हम दोनों’ भागे एक साथ । पर वह भय से घबरा उठी ।

मेरे भी मुख में फेन भरे थे । साँस फूल रहा था । हम रुके । दूसरे ही क्षण रस्सी मेरी गरदन में आ गिरी । मैं उछला, कूदा; हिनहिनाया, दया की भिक्षा माँगी, पर वह निष्ठुर मनुष्य था । कोई विरोध, कोई प्रतिवाद, कोई प्रतिकार सफल न हुआ । उसने मेरा मुँह जकड़ कर बाँध दिया । पीठ पर बैठ गया । ढण्डों की मार से मेरी पीठ उधेड़ डाली । पीड़ा से मेरे प्राण विकल हो गए । सारा शरीर पसीने में भीग गया । आँखें डब-डबा रही थीं । वह मेरी दशा पर आँसू बहाती रही । करुणा-भरे उसके नेत्रों में याचना थी । 'हम दिछुड़ गए । उसकी हिन-हिनाहट के शब्द दूर तक मेरे कानों में आते रहे । उस स्वर में विवशता थी; हार्दिक वेदना थी; और थी वियोग की वह मर्मा-न्तक पीड़ा जो बेसुध बना देती है; हृदय को बेध डालती है; उसकी सरल कटाक्ष-भरी आँखें मुझे अपने सम्मुख चित्रित-सी दिखाई पड़ीं; वे चाँदी के तारों-जैसे चमकते अयाल-पुष्ट देह, खड़ी कनौतियाँ.....'।

‘धड़कते हृदय से मैं अपने स्थान पर आ गया । मेरा अङ्ग-अङ्ग ढण्डों की मार से दुःख रहा था । मालिक ने मुझे अधिक सतर्कता से बाँध दिया । आगे और पीछे की टाँगें जकड़ दीं । फिर चचा, वे सूनी घड़ियाँ थीं और मैं था । उसकी हिनहिनाहट की मधुर ध्वनि जैसे आज भी हवा के झोंकों में गूँजती हुई सुनता हूँ !

“अनेक बार सावन की घटाएँ आसमान में भूलती हुई

दिखाई दीं। बिजलियों ने आँखों में चकाचौंध पैदा की। सरस-राती हुई शीतल वायु अङ्गों को छूती हुई निकल गई। वह सुनसान जङ्गल, भरने का ठण्डा पानी, स्वतन्त्र-स्वच्छन्द होकर छल्लों भरना हृदय पर चित्रित-सा हो गया है। पर जीवन में अब वह आनन्द न मिल सकेगा, चचा। आयु के दिन यों ही बीत जाएँगे। उसकी याद... हाय चचा, कलेजे में दबाए बैठा हूँ ! वह सफेद बादल के टुकड़े-जैसी जवानी की पहली उमङ्ग-सी चञ्चल... हठी.....”

घोड़े का गला भर आया। उसकी आँखों के किनारों पर आँसू छलछला रहे थे।

बैल ने नतमस्तक ही कहा—“बेटा ! दुःख न करो ! सभी का जीवन एक पहेली है—एक स्वप्न है। मैं तुमसे भी अधिक दुखी हूँ। न खाने का ठिकाना, न रहने को स्थान। भटकता फिरता हूँ उस सूखे पत्ते की तरह, जिसको हवा का वेग बलात् उड़ा लाया हो।”

बैल आँखें बन्द किए कुछ क्षण मौन रहा। घोड़ा भी कुछ न बोला। जैसे दोनों ही अपनी अपनी अवस्था का मार्मिक विवेचन कर रहे हों। उम्र की बीती घड़ियों पर दृष्टिपात कर रहे हों।

इस मौन को भङ्ग करता हुआ महसा एक कुत्ता कीऊँ... कीऊँ... करता हुआ इधर ही चला आया। एक टॉग ऊपर को उठाए लँगड़ाता, जीभ बाहर निकाले; पीड़ा थी उसके

क्रन्दन में ।

कुत्ता आकर बैल के निकट ही खड़ा हो गया । ‘कीऊँ-कीऊँ’ का स्वर कुछ मन्द पड़ा तो घोड़ा पूछ बैठा, ‘तुम क्यों रोते हो भाई ? क्या बात है ?’

कुत्ते ने पीड़ा से कराहते हुए कहा, ‘दादा, कुछ नहीं । एक आदमी ने पाँव में पत्थर मार दिया है । आह...बड़ा दर्द है !’ ‘क्याँआँ...क्याँआँ...’ वह फिर चिल्ला पड़ा ।

बैल ने आँखों की पलकें उठा कर कहा, ‘अपराध किया होगा तुमने कोई, बेटा । क्यों है न यही बात ?’

कुत्ते ने पंखों से आँसू पोंछते हुए कहा, ‘अरे कुछ नहीं अपराध किया, दादा ! वह आदमी गोटी खा रहा था । मैंने ताक भर लिया उसकी तरफ । बस वह क्रोध से भन्ना गया । एक बड़ा-सा पत्थर फेंक मारा मेरे ऊपर ! मैं भागा भी, पर पत्थर पिछली टाँग में आ लगा । आह बड़ा दर्द है, टूट गई है हड्डी जैसे ...’

घोड़े ने कहा, ‘बैठ जाओ, भाई, यहाँ जरा-सी छाया है; दम ले लो एक क्षण तुम भी ! रोने-धोने से क्या लाभ ?’

कुत्ता बैठ गया और अपना पाँव चाटने लगा । बैल ने नींद की एक झपकी ली । उसकी गर्दन पृथ्वी से आ लगी । घोड़ा भी ऊँघ गया ।

धूप ढलती जा रही थी पर गरमी की आग वैसी ही सुलग रही थी । वृक्षों के मुँह झुलसे हुए थे । पवन में आग की लपटें

उठती थीं। कुत्ता जीभ बाहर निकाले हॉफ रहा था। उमकी भी आँखों में नींद की खुमारी थी। पलकें मिली जा रही थीं। पाँव का दर्द कुछ शान्त हो गया था। सहसा कुछ आहट हुई। मनुष्य की छाया कुछ लम्बी होकर दीवार पर सरकती हुई नीचे उतर गई। घोड़े का मालिक था। सन्ध्या समय का दाना घोड़े को देने आया था। उसकी दृष्टि बैल पर पड़ी। वह क्रोध से अपने आपको न सँभाल सका। वह चिल्लाया। उसके बीभत्स स्वर में क्रोध की आग भड़क रही थी।

धत्तूरी की ! चर गया न सारी घास ! यही गोज मेरे घोड़े का चारा खा लेता है ! मरे इसका मालिक ! कैसा आवारा बैल है। बाँध कर भी तो नहीं रखता कोई इस उजाड़ू जानवर को। घाम समेटने की लकड़ी जो वहीं पड़ी थी, उठा कर बैल की पीठ पर दे मारी। धप्प में एक शब्द हुआ। घोड़े ने चौंक कर पिछले पैर फेंके। बैल लाठी की कड़ी चोट खाकर उठा, पर अगले पैरों ने साथ न दिया। उठता-उठता फिर गिर पड़ा। घोड़े के मालिक ने तब तक एक और प्रहार कर दिया। हड्डियाँ बोल गईं। बेमुध होकर वहीं पसर गया। मुँह से फेन और आँखों से पानी बह निकला। आँखें खुली रह गईं। घोड़ा कान ऊँचे किये घबराया-सा यह घटना देखता रहा। कुत्ता भी इस भयानक काण्ड से डरता हुआ-सा भागा ! एक बार पीछे मुड़ कर देखा उसने ! 'क्याँआँ' की चीख उसके मुख से भय के कारण निकल पड़ी।

धूप लाल पड़ती जा रही था। घोड़ा न जाने क्या सोच रहा था ! उसने दाना नहीं खाया, पानी सूँघ कर रह गया।

उम छप्पर की छाया में अब भी वह घोड़ा ऊँघता रहता है। उस बूढ़े बैल की याद उसे आ जाती है और उसके ये शब्द भी - 'बेटा जब तुम बूढ़े हो जाओगे, तुम्हारा मालिक भी तुम्हें घर से निकाल देगा। आदमियों की जाति बड़ी निर्दयी होती है।'



:: ३ ::

नवाब साहब का बाग़

हम दोनों आदमी नख्खास से चल कर रिकाबगंज तक आ पहुँचे। मेरे साथी बोले—यहाँ तक आ ही गए हैं, तो नवाब अनीम साहब से भी मिलते चलें। सुना है, कुछ चीनी के बर्तन उनके पास बहुत सुन्दर हैं। पुराना घर है। नवाब वाजिदअली शाह के खानदान से हैं। कभी बड़े रईस थे।'

मैंने कहा—'हाँ, हाँ, जरूर। नवाब साहब के पास कुछ पुरानी तस्वीरें भी मिल जायेंगी। ज्यादा कीमत पर भी मिलीं तो बुरा क्या है। लखनऊ आना सफल हो जायगा। तस्वीरें ठेठ मुगल होंगी।'

हम कई गलियों को पार कर नवाब साहब के दरे-दौलत तक जा पहुँचे । एक नानबाई की दुकान पर पूछा —क्यों म्याँ, यहाँ नवाब अनीस साहब रहते हैं ?'

नानबाई ने देग में चमचा घुमाते हुए हमारी तरफ आश्रय से देख कर कहा—'अरे, इतना भी नहीं जानते ! अमाँ, वह क्या है, हुजूर नवाब साहब ही का तो बालाखाना नज़र आ रहा है । कौन नहीं जानता नवाब साहब को ? किसी ज़माने में इनके नाम की तूती बोलती थी, तूती । क्यों ज़फ़र भाई, बोलते क्या नहीं ? क्या ज़माना था, बल्लाह । अरे साहब, नवाब बाज़िद-अली शाह मरहूम खुद तशरफ़ लाते थे इनके दरे-दौलत पर । जी हाँ.....'

यह लम्बी व्याख्या सुन कर मैं विचार करने लगा कि नवाब के यहाँ अवश्य कुछ प्राचीन चित्र मिल जायेंगे । नवाब साहब के मकान की विचित्र छटा थी । दो फूटी दुकानों के ऊपर टाट के दो-तीन परदे लटक रहे थे । एक फटी बोरी, जो परदे की आवश्यकता को पूर्ति करती थी, खिड़की पर भूल रही थी । कत्थे और चूने के हाथ पोछते-पोछते परदों का रंग लाल धम्बरीकी शोभा धारण किए था । दो नुचे हुए पगों के मुर्गे दुकान में चहलकदमी कर रहे थे । उनकी गरदन के बाल प्रायः सफ़ाचट हो चुके थे, तब भी उनकी चितवन में शाही दबदबे का नूर था । उनमें से एक मुर्गे ने कुकड़ू-कूँ की बाँग लगाई और एक पाँव ऊँचा करके जैसे हमारी गति-विधि का निरीक्षण कर

रहा हो, इस प्रकार खड़ा हो गया ।

हम सोच में पड़ गए कि नवाब साहब को आवाज़ लगायें या जीने पर चढ़ चलें । पर आवाज़ लगाना शान के खिलाफ़ होगा और बिना इजाजत जाना गुस्ताखी होगी । मैंने अपने साथी से कहा—‘कृपया आप ही कोई युक्ति सोचिए । मैं तो लखनऊ में पहली बार आया हूँ । यहाँ के शिष्ट व्यवहारों से अपरिचित हूँ ।’

मेरे मित्र ने उपाय सोच लिया । उन्होंने जीने के किवाड़ की कुण्डी ज़ोर से खटखटाना शुरू किया । दो-ही-तीन झटके लगाने पर एक सज्जन जीने से उतरे—फटा हुआ चूड़ीदार पाजामा, नंगे बदन और दाढ़ी के दो-चार बाल केवल ठुड़ी पर लटक रहे थे । मिर घुटा हुआ था तथा पान खाते-खाते और चूना चाटते-चाटते हाँठ फाख़तई रंग के हो चुके थे । ज़र्दे का पान मुँह में दवाये हुए बोले—‘हाँ, फर्माइए, क्या काम है ? कौन हैं आप ? कहाँ से……?’

हमने निवेदन किया कि हम लोगों को नवाब अनोम साहब से मिलना है, ज़रा इत्तला कर दें, तो अच्छा हो । मियाँ साहब ने पान से भरे मुँह से कहा—‘अभी तो सरकार चौमर खेल रहे हैं । आय-हाय, क्या बाज़ी चल रही है । ऊँ-हूँ, दो बाज़ी हार चुके हैं । इसी तीसरी से कुछ उम्मीद है, ज़रूर जीत रहेगी । अल्लाह करे, हुज़ूर जीतें । आप भी क्या बेमौके आए हैं । अरे साहब, शाम को तशरीफ़ लाते, तो नवाब साहब बाग़ में ही

घूमते हुए मिल जाते। इत्तला भी क्योंकर की जाय, भला आप ही सोचें। अच्छन मियाँ की दो गोटे मरी पड़ी हैं और और तीसरी...।’

मैंने कहा—‘जनाब, हम दूर से आ रहे हैं और यह भी क्या मालूम था कि इस वक्त नवाब साहब चौसर खेलते हैं। आप इत्तला कर दें, तो इनायत होगी।’

मियाँ साहब बोले—‘अमाँ, देखते नहीं, बड़े आदमी हैं, कोई ऐसे-वैसे तो हैं नहीं। आप समझ क्या रहे हैं? अजी, जनाब नवाब मरहूम... खुदा उन्हें जन्नत दे, अहा-हा, क्या शान थी, क्या मरतबा था! अजी, यां कदिए कि सारे लखनऊ में दुहाई फिरती थी उनके नाम की। सल्लनत के हकदार थे। लाट साहब खुद हाथ मिलाने आते थे, घण्टों इन्तजार में खड़े रहते थे। शतरंज तो, माशाल्लाह गजब की खेलते थे। लाट साहब तक को कई बार उन्होंने मात दी है। लखनऊ-भर में उनका मुकाबिला करने वाला कोई न था। ओहो-हो, क्या नक्शा रहता था उनकी बाजी का। देखने वाले दाँताँ उँगली दबाने थे। सुबह से शाम हो जाती थी...।’

मैं खड़े-खड़े थक गया था। मैंने बीच ही में बात काट कर कहा—‘जी हाँ, बजा फरमाते हैं। लेकिन इत्तला हो जाती, तो हम कुछ देर इन्तजार कर लेते।’

मियाँ साहब ने कहा—‘अच्छा; तो आप पाई बाग में तशरीफ रखें, मैं इत्तला किए देता हूँ। बाग वह नज़र आ रहा है।’

आप यहीं इन्तज़ार करें ।’

मैंने आंखें घुमाकर चारों तरफ देखा, वाग का कोई चिन्ह दृष्टिपथ में नहीं आ रहा था । मियाँ साहब कहे जा रहे थे—‘अरे, वही तो है साहब, सामने जो नजर आ रहा है । वह देखिए नीम का पेड़, वह कौआ उड़ा ।’ मैंने बहुत चेष्टा की कि वाग दिख जाय, पर मेरी बुद्धि कुण्ठित थी । सामने एक पेड़ तक न था । हताश होकर मियाँजी ने मैंने कहा कि आप हमें वाग में छोड़ आते, तो मेहरबानी होती । मियाँ साहब ने कुपित होकर कहा ‘अरे आइए साहब, वह जो है...।’

हम अपराधी की भाँति पीछे हो लिए । लगभग दस फुट आगे जाकर मियाँ रुक गए । वैशाख की अंगारे बरसाती हुई धूप बरस रही थी । ग्यारह का समय था । शरीर पसीने-पसीने हो रहा था । इसी खुली धूप में नीम का एक वृक्ष खड़ा था, जिसकी शाखाएँ कटी हुई थीं, केवल एक सूखी शाखा पर कुछ गिने-चुने पत्ते थे ! नीम के मोटे तने की छाया में एक टूटी-सी खटिया पड़ी थी, जिसका मध्य भाग ही छाया से ढँका था और सब स्थान धूप से जल रहा था । एक सुराही खटिया के नीचे पड़ी थी । सुराही की गरदन सम्भवतः पिछले दो साल से टूट रही होगी । बाहर से सुराही का रंग सब्ज मालूम होता था । बजू करने का एक बँधना लुढ़क रहा था । नीम के वृक्ष पर दो-तीन कौए गोष्ठी-मुख का आनन्द ले रहे थे । नीम के तने की छाया के एक भाग पर एक कुत्ते ने अधिकार कर रखा था । चारों ओर का

अहाता कूड़े के ढेर से बना हुआ था। बीच के मैदान में यह नीम का वृक्ष न-जाने कब से एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा है।

भियाँ साहब ने कहा—‘पलँग पर तशरीफ रखिए, बड़ी ठण्डी हवा आ रही है। मैं अभी आया।’

मैंने कहा—‘खाँ साहब, वह बाग यहाँ है?’

वे बोले—‘हाँ, यही नवाब साहब का बाग है। अरे साहब, इस नीम के दरख्त के साए का क्या कहना है, बाग के उस सिरे तक रहता था! पिछले साल कुछ लकड़ियों की जरूरत पेश आ गई थी। मजदूरन इसकी डालियाँ काटकर जलाने के काम में लानी पड़ीं; वरना यह वह सायादार दरख्त था, जहाँ मुहल्ला-भर आकर गरमियों में बैठता था। हुजूर नवाब साहब तो इस दरख्त के नीचे घण्टों हुक्का नोश फरमाने थे। इसी दरख्त के नीचे मसीत नान बाई के मुर्गे को नवाब साहब के मुर्गे ने वह शिकस्त दी थी कि लोग आज भी याद करते हैं। मुर्गा क्या था, रुस्तम की रूह का साया उसमें मौजूद था। साहब, जब गरदन उठाकर, सीना तानकर खड़ा होता था, सुबहान अल्लाह, क्या कहने हैं! ओहो हो, वड़े-वड़े जंगजू लोगों के कलेजे हिल जाते थे। क्या बाजू मारता था! चौंच लड़ाते ही तालियों की आवाज से मुहल्ला गूँज उठता था। उसकी तीन इंच ऊँची कलगी गुड़हल के फूल की तरह खुशनुमा मालूम होती थी। नवाब साहब उसे जान से ज्यादा चाहते थे। हाँ, तो इत्तला किए देता हूँ। जनाव का इस्मशरीफ?’

मैंने कहा—जी, मेरा नाम तो नवाब साहब जानते नहीं । आप सिर्फ इतना कह दें कि जयपुर से आ रहा हूँ । आपका नाम सुना था; मुलाकात के लिए चला आया हूँ ।’

मैं साहब ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—‘तो आप जयपुर तशरीफ रखते हैं ? जयपुर तो राजपूताने में है । खूब साहब, खूब, बड़ी दूर से आ रहे हैं । नवाब साहब का नाम आपने जरूर सुना होगा । वे शतरंज और चौमर के बेजोड़ खिलाड़ी हैं । दूर-दूर तक नाम है साहब उनका । आपके राजा साहब को भी मुर्गे लड़ाने का शौक तो जरूर होगा । क्यों नहीं, रईम हैं, उन्हें और करना ही क्या है । खुदा ने हुक्मत दी है । ये ही शौक तो ऐसे हैं, जिनकी वजह से इन्सान का नाम दुनिया में ज़िन्दा रह जाता है । नवाब याज़िदअली शाह साहब को लीजिए! मरहवा, क्या शाने-शौकत थी! म्याँ, बटेर लड़ाने में आज तक उनकी मानी का दुनिया में पैदा न हो सका और न क्रयामत तक होगा । हमारे नवाबसाहब हर फन में माहिर थे । कनकौवे लड़ाने थे, तो कसम खुदा की, कत्ले-आम हो जाता था । लखनऊ में कनकौवों का बाज़ार गर्राँ हो जाता था । आपके राजासाहब अगर तारीफ सुनते, तो यकीन मानिए, जरूर कनकौवे लड़ाने लखनऊ तशरीफ लाते । साहब क्या किया जाय, न रहे नवाबसाहब, वरना यह बाग, अजी जनाब, जन्नत का नक्शा होता, जन्नत का । ओफ...गया ज़माना, क्या कोई शोक करेगा । वो वो जमाने देखे हैं । दूर-दूर से लोग ज़िया-रत के लिए आते थे । वलायत के बादशाह कान पकड़ते थे उनके

नाम पर। क्या कनकौवे लड़ाने में, क्या सुर्गे लड़ाने में, गोया सारे फन हमारे नवाबसाहब के दस्ते-मुबारक के जेरसाया रहते थे। हां, जनाव, तो मैं इत्तला किए देता हूँ। क्या अर्ज करदूँ? जयपुर के राजासाहब का कोई पैगाम तो नहीं लाये हैं आप! शायद नवाबसाहब को शतरंज खेलने को बुलाया हो।'

मैंने कहा—'जी नहीं, सिर्फ कुछ बातें करनी हैं। योंही चला आया था।'

मियाँ बोले—'कोई मुजायका नहीं। क्यों साहब जयपुर में कबूतर तो बड़े अच्छे मिल जाते होंगे। हमारे सच्चे कबूतर का जोड़ा आप देखेंगे, तो बहुत खुश होंगे। उधर भी शायद मिलते हों; लेकिन, साहब, उसके पंरों पर जो कत्थई दाग आ गए हैं, उन्होंने तो गजब ढा दिया है। और उड़ान, तौवा करिए, वह गिराह लेता है। अमाँ, दस-दस गिराह एक मांस में। सर की कसम, मजा आ जाता है। उसकी जोड़ का उड़ने वाला जानवर दूर-दूर तक नहीं है। जब उसका खयाल आ जाता है, तो जी चाहता है कि अपना कलेजा नोच डालूँ। साहब, कबूतरवाजी ही खत्म हो गई! दुनियाँ में अब रखा ही क्या है?'

मियाँ साहब की व्याख्या का अन्त न होते देख मैंने कहा—'हां, माँ साहब, तो हम लोग जायँ या इत्तला होगी?'

खां साहब ने कहा—'भई बाह! यह लीजिये, हुजूर खुद ही यहां तशरीफ ला रहे हैं। वह देखिए।'

नवाबसाहब चूड़ीदार पाजामा पहने थे, जिसके दोनों घुटनों पर पैबन्द लगे थे। कुरता कन्धों से फट चुका था। गले पर रेशमी कसीदे के फूल कढ़े थे। टोपी तेल से चिकनी होकर अपनी प्रार्चानता का परिचय दे रही थी। दुर्बल शरीर, बड़ी-बड़ी मूँछें, घुटा दाढ़ी। होंठ के नीचे कुछ बाल थे, जो मेहदी से रंगे हुए थे। पान की लाली से होठों पर कालिमा थी। आँखों में सुरमा, एक हाथ में पंखा और दूसरे में पानदान था। वे मन्दगति से चले आ रहे थे। उनके पीछे-पीछे दो सज्जन और आ रहे थे, जिनमें एक तहमद लगाए नंगे वदन थे और दूसरे घुटनों तक चपकन पहने और तुर्की टोपी लगाए थे। हमने नवाब साहब को झुक कर सलाम किया। वे चारपाई पर बैठ गए। हुक्म हुआ—‘म्या कप्तान, जरा पंखा तो भल्लो। गजब की गरमी है। जान लवों तक आ गई है। कम्बख्त धूप का यह हाल कि सुबह होते ही सिर पर आग की तरह बरसने लगती है। तौबा-तौबा, सितम है !’

कप्तान बोले। ‘हुजूर, बाग का मज्जा अब जाता रहा। यहाँ जैसी हवा, माशाल्लाह, मंसूरी और शिमले में भी न होगी। लेकिन वह शान न रही, सरकार ! अब यह नीम का दरख्त बचा है। कम्बख्त ऐसा मनहूस है कि न सावन सूखा, न भादों हरा।’

नवाब साहब से यह न सुना गया। उन्होंने फरमाया—‘अरे क्या कहते हो कप्तान मियाँ अब्बाजान ने वह-वह दरख्त इस बाग में लगाए थे; वह-वह पौदे जमा किए थे कि दुनिया में नापैद

थे। क्या देख रहे हो ? वहाँ सामने अमरूद का दरख्त था। म्याँ, क्या अमरूद थे, दो-दो सेर का एक अमरूद ! और जायका, ओहो-हो ! और रंग, क्या कहने हैं, गोया केसर में डुबोकर निकाले गए हैं ! खूशबू से आध मील तक हवा महक उठती थी। अमरूद क्या थे, कलाकन्द के टुकड़े थे।' नवाब साहब ने एक चुटकी मिट्टी उठाई और नाक के पास ले जाकर सूँघी। फिर फरमाने लगे—'अहा-हा, क्या खूशबू है ! कमवख्त अमरूद की बू अब तक इस मिट्टी में बसी है। तुम सूँघो कप्तान जरा। यहाँ से वहाँ तक गुलाब के पौदों की कतार थी।' फिर हमारी ओर देख कर बोले—'जहाँ वह कूड़ा इकट्ठा हो गया है, मेहतरो की बदमाशी है, साहब ! सफाई तो यहाँ के लोग जानते ही नहीं। मोतिया रंग का गुलाब तो आपने बहुत देखा होगा, पर इन गुलाब के फूलों की पंखुड़ियों पर जर्दी थी। बुलबुलें इनकी खुशबू पर मर पटकती थीं। उम चौरस्ते वाले सैयद बादशाह तो, कसम खुदा की, बिना गुलाब के फूलों की माला के तशरीफ ही नहीं लाते थे। अच्छा-जान इतर निकलवाया करते थे। कन्नौज के बेहतरीन इतरफरोश अपने करतब दिखाने थे। इतर की खूशबू उम्र-भर नहीं जाती थी, लगाने की देर थी। और केवड़ा, क्या कहने हैं साहब, गोया जन्नत जमीन पर उतर आती थी।'

हम दोनों खड़े ही थे। नवाब साहब ने हाथ उठाकर हमें बैठ जाने का संकेत किया। चारपाई पर इतनी जगह नहीं थी कि हम भी बैठ जाते। लेकिन बैठते भी कहाँ। एक-एक कोने पर सहारा

ले लिया। नवाब साहबने फरमाया—‘अरे बरकत, मोढ़ा क्यों नहीं ले आते? म्याँ, वह हैदराबादवाली नकाशी की कुरसी ले आओ। जानते नहीं, बाग में दो-चार कुरसी-मोढ़े होने जरूरी हैं। मगर साहब, क्या किया जाय, लोग छोड़ते ही नहीं हैं। कल उनके मेहमान आए हैं, परसों उनके यहाँ तकरीब का जल्सा है और अतरसों उनके यहाँ निकाह की रस्म अदा होगी। गरज कि एक कुरसी-मोढ़ा नहीं बच पाता। क्यों बरकत, है कोई कुरसी? वह हैदराबादवाली कुरसी क्या हुई? क्या कोई कम्बख्त उठा ले गया? लाहौल बलाक्यूत! साहब, तबों पर जान आ गई है, कोई चीज़ नहीं बच पाती। बरकत, कल से कोई चीज़ बिला हमारी इजाज़त बाहर न जाने पाए। जनाने में भी हिदायत कर दो। खूब है, यह भी कोई शराफत है। हमारे यहाँ आने वाले दोस्त-अजीज ज़मीन पर बैठें और माँगने वालों का यह हाल! तौबा है। हमारी ओर मुँह करके नवाब साहब फरमा रहे थे—‘साहब, बाग में जब आम की फसल आती थी, यही क्रिस्सा था, यहो मुसीबत थी। लोग एक दाना तक न छोड़ते थे। माँगनेवालों का मजमा लगा रहता था। अच्चाजान हजार कोशिश करते, लेकिन बेकार। वालिदा साहबा की सखाबत का यह हाल कि मुहल्ले में टोकरीयें आम बांट दिया करती थीं। क्या तबीयत थी उनकी भी साहब, जो हाथ में आया, खैरात कर दिया, तोहफे में दे दिया। तभी तो घर की यह हालत है। लेकिन खुदा का फज़ल है, अच्चाजान का नाम लखनऊ के रईसों में, ज़वान खोलना तारीफ है, एक जगह रखता है। जी हाँ, वरना यहाँ आपको आम-ही-आम नज़र आते। उन्हें

देखकर जी खुश हो जाता। हकीम साहब, चुप क्यों हैं? आपने तो इस बाग़ का आम जरूर खाया होगा। था कहीं लखनऊ में इम जोड़ का आम? महीनों ज़वान से मिठास नहीं छूटती थी। टोकरीं आम मुहल्ले में बांटे जाते थे। अमाँ, जवाब क्यों नहीं देते?”

हकीम साहब बोले—“हाँ-हाँ, सरकार, क्यों नहीं शाही बाग़ है, क्या कोई ऐसी-वैसी जगह है? आम मैंने न खाए, तो क्या हुआ; अब्बाजान ने खाए होंगे, दादाजान ने खाए होंगे। बहरहाल आम लाजवाब रहा होगा। मुझे तो आमों की तारीफ़ सुनकर ही इस जमीन में आमों की मूरतें नज़र आ रही हैं। वाह, क्या आम होंगे।”

नवाब साहब बोले—“क़सम खुदा की” हकीम साहब, कप्तान मियाँ ग़वाह हैं, हुज़ूर वाज़िदअली शाह मरहूम, खुदा करे उन्हें जन्नत मिले, इस बाग़ में चहलकदमी के लिए आया करते थे। आम तो उनके यहाँ फ़सल-भर यहीं से जाते थे। बड़ी-बड़ी दूर तक यहाँ के आमों का चर्चा था। कप्तान, तुम्हें याद होगा, वह सामने चमेली थी। कैसे नायाब फूल थे। बाग़ मुफ़ेद नज़र आता था, जैसे चाँदनी छिटक रही हो। बेला, मौलसिरी कौन-सा पौदा इस बाग़ में नहीं था। और नरंगियाँ, कप्तान याद है न, मैंने तो जब से बाग़ की नरंगिया ग़ायब हुई हैं, नरंगी खाना छोड़ दिया है। वरक़त, एक गिलास पानी दो हमें। अब रखा ही क्या है लखनऊ में। नवाबी गई, शाह वाज़िदअली गए। यह बाग़ भी जाने को ही है। ओह, अब्बाजान का क्या दबदबा था।

परिन्दे हुक्म मानते थे । वह तलवार तो तुमने देखी ही होगी, जिससे शेर क़त्ल कर दिया था । क्या फौलादी हाथ थे । अपने जमाने के रूस्तम रहे हैं । कप्तान बोलते क्यों नहीं ? अरे, तुमसे क्या छिपा है ? कहो, अब्बाजान की क्या शान थी ! अल्लाह जिन्दा पीर थे ! ओह, क्या रूतवा था, क्या आला शान थी, क्या जलाल !”—नवाब साहब कहते-कहते आवेश में आ गए थे ।

कप्तान रोनी सूरत बनाकर बोला—‘न कहिए हुजूर, न कहिए । दिल बैठा जाता है, कलेजा मुँह को आ रहा है । या अल्लाह !’ कह कर कप्तान रो पड़े ।

हकीम साहब ने रूमाल से नवाब की आंखें पोंछीं । बरकत मियां लम्बी सांसें ले रहे थे । हकीम साहब चिल्लाए—‘अरे कोई नवाब साहब को तो सम्हालो, लखलखा सुँघाओ । बरकत, हुजूर के दुश्मनों को भी ग़श आरहा है । कप्तान, ख़श का पंखा लाओ । ज़रा गुलाब का शरबत भी लाओ ।’

हकीम साहब परेशान-से नवाब साहब को सम्हालने लगे, तब तक वे चारपाई पर लुढ़क गए । उन्होंने लम्बी आह भरकर कलेजा थामते हुए कहा—‘कप्तान, मेरा दिल परेशान हुआ जा रहा है । अब्बाजान का जमाना याद आ रहा है, हकीम साहब ! आह, एक गिलास पानी लाओ, बरकत !’

कप्तान हवा कर रहे थे । हकीम साहब नब्ज हाथ में लिए विचारपूर्वक गति का निरीक्षण कर रहे थे और ठण्डी आहें भरते

हुए कह रहे थे—‘हुजूर को अन्दर ले जाओ, बरकत ! नसीबे दुश्मना तबीयत नासाज हुई जा रही है । जल्दी करो, कमान, सरकार को आराम की जरूरत है ।’ फिर हमारी ओर देखकर उन्होंने कहा—‘जनाव, आप साहवान कल तशरीफ लायँ हुजूर की हालत कितनी खराब है, आप देखते ही हैं ! बोलना तक मुश्किल हो रहा है । तशरीफ ले चलें, हुजूर ।’

नवाब साहब एक हाथ बरकत के कन्धे पर और दूसरा कमान के कन्धे पर रख आहिस्ता-आहिस्ता जनानखाने में तशरीफ ले गए । हकीम साहब पंगवा हिलाते और दुआएँ मांगते जाते थे—‘या रब्बुल आलमीन तेरा करम ।’

हम भी इस आकस्मिक विपत्ति को देखकर निराश आशा मीर की सराय की तरफ लौट चले ।



मेरी पत्नी

माघ के महीने का घोर शीत, उस पर भी तीन दिन से आकाश में बादल घिरे हैं । आज की वर्षा ने तो शीत को अपनी सीमा तक पहुँचा दिया है । हाथ की अँगुली भी लिहाफ के बाहर निकल जाने से मालूम होता है जैसे बरफ का ठण्डा पानी छू गया हो । गाय, बैल, घोड़े आदि पशु सिकुड़े खड़े हैं । पक्षों में मुख छिपाए कबूतर मकानों के छज्जों के

नीचे एक-दूसरे से सटकर बैठे हैं। वृत्तों के पत्ते झड़ चुके हैं और दिशाएँ कुहरे से आच्छन्न हैं। प्रातःकाल का धुँधला प्रकाश है। कुछ मटमैले बादलों ने अब तक आकाश को घेर रक्खा है। दूर सड़क पर से किसी ताँगे-इक्के की घरघराहट सुनाई पड़ जाती है, जो चार बजे की गाड़ी से जाने वाले मुसाफिरों को स्टेशन पर पहुँचा रहे हैं। हमारी गली के मोड़ पर से फेरी देने वाले दो साधु—“बाबा दम ही दम का है मेला” गाते हुए निकल रहे हैं। उनकी ध्वनि मन्द-सी पड़ती जा रही है। एक परम वैष्णव प्रातःस्नान से निवृत्त होकर सम्भवतः किसी मन्दिर में दर्शनार्थ जा रहे हैं। उनके कटकट बोलते हुए दाँतों से ‘हरे कृष्ण, हरे राम’ के शब्दावलियाँ थरथराती हुई निकलती जा रही हैं और खड़ाऊँओं की घिसटती हुई खटर-खटर ध्वनि उनकी तीव्र गति को प्रदर्शित कर रही है। हमारी पड़ोसिन जुम्मी पल्लेदारनी के मुर्गे-मुर्गियाँ टोकरी के नीचे दब-ही-दबे कुड़क-कुड़क के टूटते हुए स्वरों के साथ परों को फड़फड़ाकर बाहर निकलने के लिए व्यग्रता दिखला रहे हैं। सामने के मकान-वाला ठठरा देह पर कम्बल लपेटे वरतनों को ठोकने लगा है। उसके निकट बँधी हुई बकरी मिमिया उठी। मैंने एक बार लिहाफ से मुँह निकाला और फिर ढँक लिया। खिड़की के बाहर मकानों की पंक्तियाँ जैसे अन्धकार में डूब रही हैं। ठण्डी हवा का एक झोंका मेरे मुँह पर एक चपत-सी लगाकर निकल गया। मैंने पुनः मुँह बाहर निकालने का साहस न किया। मैं बिस्तर में ही लेटा

लेटा सोच रहा हूँ—लोग दिन भी नहीं निकलने देते कि जाग पड़ते हैं। अभी रात्रि का अन्धकार भी नहीं हटा और ये स्नान कर चुके हैं। प्रातःकाल उठना अवश्य स्वास्थ्यकर होता है, पर इस स्वास्थ्यवर्धन की कठिनाई से तो अस्वस्थ रहना ही अधिक लाभदायक प्रतीत होता है। अस्वस्थता में जो कष्ट है क्या वह इस शीत-भरे प्रातः काल में उठने से अधिक हो सकता है। वह धन्वन्तरि महाराज का ही युग था जब ये स्वास्थ्यवर्धन के नियम बनाए थे। अब भी इस नियम के अनुयायियों की संख्या कम नहीं है। मेरी पत्नी है कि तीन बजे से जाग रही है। इसने तब से अब तक कितने काम कर लिए हैं, इसका विपेश ज्ञान नहीं है और न मुझे उसके जागने का ही निश्चित समय मालूम है, न आज तक रहा। किन्तु ऊपर वाले कमरे में भाड़ू लगने की सरसराहट ने प्रकट कर दिया है कि नियमानुकूल वह अपने कार्य में व्यस्त हो रही है। किसी दूटे हुए भटके के टुकड़े खिड़की से बाहर फेंके गए। कुछ कूड़े का ढेर धप्प से गली में आगिरा। कुछ कागज के टुकड़े सरसराते नीचे आ रहे हैं। उसकी चूड़ियां वुहारी के भटके के साथ खनखना उठती हैं। कभी क्रोध का स्वर भी सुनाई दे जाता है। 'हाय रे राम, ये सब घर वाले कितने गन्दे हैं। इतना कूड़ा रोज निकालती हूँ। रोज यही हालत रहती है। केले के छिलके, कागज की कतरनें, रही अखवार, दियासलाइयां, सिगरेट की खाली डिब्बियां, मूंगफली के छिलके, कच्चे से भड़े सिर के बाल ! यदि इन्हें खिड़की के बाहर ही फेंक दिया करें

तो किसी का क्या बिगड़ जाए। आखिर ये ग्विड़कियां हैं किस लिए ? पर इन्हें तो मुझसे दुश्मनी है। शाम-सबरे दोनों समय भाड़ू लगाने पर भी यह गति है। कबतक सहता रहे कोई ? कहो तो बुरा लगता है सबको ! और ये बे काम बे मतलब घर पर आने वाले निखटू ! इन्हें कोई काम भी तो नहीं। अन्दर तक जूते घसीटते चले आते हैं। मिट्टी तक नहीं भाड़ते जूतों की। धरम करम तो गया चूल्हे में, गन्दगी का तो ध्यान रहे। और ये हैं कि इन्हें मना तक नहीं करते। मित्र हैं, काम वाले हैं, तो क्या इसलिए हैं कि घण्टों बैठे रहें, खाना तक ठण्डा हो जाय। अरे बाहर ही जाकर बातें करलें तो कौन-सी नाक कटी जाती है, आबरू बिगड़ी जाती है। यह कूड़ा तो न फैले। वे सिगरेट जला-जलाकर सीकें फेंकते रहेंगे और ये देखते रहेंगे। किसी को क्या, मुसीबत है तो मेरी। कहे बिना नहीं रहा जाता। छः बज रहे हैं और सोते पड़े हैं। पखेरू भी अपने-अपने काम में लग गए। भजन-पूजन न सही, मुंह-हाथ तो धोकर दूध पी लेते। कब से गरम है, अगीठी तक जल गई। उस पर कंट्रोल का कोयला ! पानी गरम किया है; वह ठण्डा होने को आया। दुनियां के लोग नहा-धोकर अपने काम में लग चुके, ये हैं कि अभी बिस्तर में लिपट रहे हैं। उस पर कहते हैं, हम पढ़े-लिखे हैं। क्या पढ़ना यही सिखाता है कि नौ बजे तक सोते रहें ? इनसे तो वह रामजीलाल हलवाई ही अच्छा है। चार बजे से भट्ठी जला रखी है। तीन बजे सोकर उठा होगा। यह मानसजोनि बार बार थोड़े

ही मिलती है कुछ भजन-सुमरन न बने तो शरीर का जतन तो रहे। ऐसा भी क्या आलस ? सरदी तो हमें भी लगती है। पर इनकी तरह सोते रहें तो यह काम कौन कर जाए ? यह टोकरी भर कूड़ा ! सब किताबें उधर बिखरी पड़ी हैं। कहीं पेंसिल, कहीं कलम ! दवात में स्याही नहीं रह पाती। दिन में दस बार लुढ़कती है। उसे उठाना तक पाप है। मैंने न देखा तो पड़ी ही रही। परवाह किसे है ! सोते रहें, मेरा क्या जाता है ! पर यह आदत अच्छी नहीं होती। अब मां-बाप तो रहे नहीं, जो उठने के लिए बुरा-भला भी कह लेते ! रही मैं, मेरी कौन सुनता है ? अरे सूरज सिर पर आ गया है। चतरी दही वाली सारा दही बेच कर घर लौट रही है। स्कूल जानेवाली लड़कियों की मोटर का भोंपू बज रहा है। ये जाड़े के दिन, अभी बारह बजते हैं। राम राम, ऐसी भी क्या नींद ! बच्चों से भी गये-गुजरे।'

इस प्रकार अविराम गति से चलने वाली इन वाक्यावलियों ने, जो तार और मन्द स्वरों में प्रकट हो रही थीं, मुझे विचलित कर दिया। पत्नी का मेरे प्रति यह क्रोध प्रकट करना कोई नवीन बात नहीं है। यह तो उसके दैनिक कार्यक्रम में सम्मिलित है। मुझे भी सुनते-सुनते अभ्यास हो गया है। मैं देर से उठता हूँ, यह निर्वीवाद सत्य अवश्य है, पर नौ बज गए हैं, इस मिथ्या दोषारोपण से मेरा अभिमान भी पददलित-सा हो उठा। मेरा क्रोध कितना मृदु और अल्पकालीन होता है, यह मेरी पत्नी जानती है। तब भी उसका रोष मेरे किञ्चित् भी प्रतिवाद से

परिस्थिति को कितना जटिल बना देगा, इसकी सूचना तो उसका—तीव्रता की चरम मीमा तक पहुँचा हुआ—स्वर ही दे रहा है। कूड़ा आज सचमुच कमरे में अधिक है; वह कुछ मुँह-लगे मित्रों की कृपा है। मेरा क्या दोष है? किन्तु यह तो विवाद ही का एक निमित्त हुआ, जिसे वह किसी प्रकार स्वीकार करने को प्रस्तुत न होगी। कहेगी कि तुमने मना क्यों नहीं कर दिया। तब भी मैं पति हूँ, इसमें तो सन्देह ही क्या है! पतियों को जो अधिकार प्राप्त हैं वे सब मुझे भी हैं। गर्जन, तर्जन, दण्ड, भेद—सभी कुछ! हाँ मेरी योग्यता अवश्य इस विषय में विचारणीय है। क्रोध के समय भी प्रायः मेरे होठों पर मुस्कुराहट आ जाती है और सारा खेल बिगड़ जाता है। जो रूपक बाँधना चाहता हूँ, नहीं बंध पड़ता। एक मित्र ने एक बार कहा था, कई दिनों तक बोलना नहीं चाहिए, तेवर चढ़ाए रहना चाहिए; जो भी बोले उस पर बिगड़ बैठना चाहिए। अपना क्रोध प्रकट करने के लिए ये अच्छे प्रकार हैं। मैंने इनका अनेकों बार अभ्यास किया है। पर मैं क्यों असफल रहता हूँ, यह आज तक नहीं जान पाया। सारा दोष तो मेरी हँसी का है, जो बे-मौके आ जाती है और मेरी पत्नी है कि रूठ गई तो आँख उठाकर नहीं देखती। कलह का सूत्रपात होना भी तो अच्छा नहीं होता। पर क्रोध ही तो था। मैंने लिहाफ के अन्दर ही से कुछ उग्र स्वर में कहा—“तुमने तो मेरा सिर खा लिया है। क्या यह झाड़ू लगाने का समय है?

दिन तो निकल आने दिया होता। अंधेरा इतना है कि हाथ को हाथ नहीं दिखाई देता। और तुम भाड़ू लिए घूम रही हो। सच कहता हूँ, तुम पर भगवान् का कोप है। जब आनन्द से नींद लेने का समय है, तुम कूड़ा साफ कर रही हो। आखिर भाड़ू इतनी जल्दी लगाने ही से क्या लाभ हो जाएगा? सूरज निकल आने देती, मुझ पर नहीं तो अपने ही पर दया करो। मेरी नींद तो हराम कर ही दी। दो घण्टे से यह बेसुरा राग अलाप रही हो। अरे उठ जाएँगे, क्या रोज-रोज थोड़े ही देर से उठते हैं। सरदी तो मेहमान है चार दिन की, चली चाएंगी। फिर कौन सोता है देर तक। रामजीलाल हलवाई की बात कहती हो! वह भी तुम्हारे-जैसा सनकी होगा। मूर्खों की तो दुनियाँ में कमी नहीं है। संसार में सोते रहना तो बहुत दुर्लभ है। अब दया करो मुझ पर, दस मिनिट सो लेने दो। भाड़ू दे रही हो तो चुपचाप देती रहो। पानी ठण्डा हुआ जा रहा है तो आज नहीं कल नहा लेंगे। कोई बिगाड़ क्या लेगा हमारा? घर की बात है। अवसर भी तो देख लिया करो। यह तो”

“हाँ, हाँ, देख लिया अवसर! मैं तो जानती थी कि दोष मेरा ही बताओगे। एक तो अकल की बात कही, और नाराज होने चले हैं। घर के लोगों तक को बिगाड़ रक्खा है। आठ बजे तक सोकर नहीं उठते। घर का काम पड़ा है तो पड़ा रहे, ईन्हें क्या! एक नौकर है। वह भी नौ बजे आकर सूरत दिखाता है, जब सारा काम हो चुकता है। फिर उसे रक्खा किस काम के

लिए हैं। चार दिन से लाल मिरचें नहीं हैं घर में। साग-तरकारी लेने जायगा तो दस घंटे में लौटेगा। मिरचें लाए तो कौन लाए ! खाना खाया और कहेंगे नौकरी पर जाना है। वहां से आए कि कोई सभा करने वालों में से आ धमकेगा। ये कवि-सम्मेलन हैं कि रोज होते हैं। भोपू में बोल-बालकर मिर खा लेते हैं। और ये सभायें करके राम जाने क्या करते हैं ! इससे तो रामलीला ही कर लें तो चार पैसे मिलें। धरम का धरम, करम का करम। राजवाले मना करके भी हार चुके, जेल से भी तो नहीं डरते ये लोग। इनसे तो वे देहली वाले पण्डितजी कैसी अच्छी कथा वांचते थे। दो घड़ी राम का नाम मुँह से निकलता था। और ये सभा वाले कहते हैं विधवाओं का व्याह रचाओ, भङ्गियों के साथ खाना खालो, कलजुग नहीं तो और क्या है ? इन्हें भी यही बातें आती हैं। कोयले की दूकान में कालिख ही लगेगी। अखबार वाले, सुना है, यही सब छाप-छापकर लोगों को वहकाते हैं। अखबार भी तो कम नहीं निकलते हैं। सारा घर अखबारों से भरा पड़ा है। फिर भी अखबार आ रहे हैं। और ये अखबार वाले हैं कि जिन्हें बैठे-ठाले और कुछ काम न हो तो कागजों के ढेर-के-ढेर ही काले किए जाते हैं। ये भी तुम्हारे ही जैसे कविता लिखने वाले होंगे जो बे-मतलब के काम किया करते हैं। आखिर इनके अखबार लेता कौन है ? रही के भाव जब पंसारी भी नहीं खरीदता तो यहां फेंक जाते हैं। जैसे मकान

इनके बाप खरीद कर रख गए हैं। यहां कूड़ा इकट्ठा करने के लिए हजार बार इनसे कहा होगा कि इन अखबारवालों से कह दो कि अखबार यहां न लाया करें। कब तक ये इकट्ठे होते रहेंगे, बेच ही डालते तो रुपया-चारह आना पैसे मिल जाते। बोरियों में भरते भरते नाकों में दम आगया। कल ही मैं बिस्कुट वाले लालाजी को दिए देती हूँ। उनके काम तो आजाएँगे। बीसों बार उनकी घरवाली कह चुकी है। इन कागज के टुकड़ों से ऐसी क्या मुहब्बत? अब देखती हूँ कैसे इस कूड़े को घर में रखते हैं। कविता लिख-लिखकर कितने कागज खर्च किए हैं। कोई कहीं पड़ा है, कोई कहीं इकट्ठे रख छोड़े हैं। नाश हो इस कविता का। इनका सिर ही फिर गया है। बैठते हैं तो मोचते रहते हैं। बातें करते हैं तो बहकी हुई। रातों जागते हैं। राम रे राम, इससे मिल क्या जाएगा? चार पैसे नहीं देता कोई। कहते हैं, नाम होता है। अरे नाम को पैसा चाहिए। देखा न था सेठ हजारीमल ने कैसा व्याह किया है लड़की का। हाथी आए थे वरात में। सारे शहर में नाम हो गया। किया है किसी ने ऐसा व्याह? नाम न होगा तो क्या होगा? पैसा खर्चा है। तुम हो कि कागज काले कर-करके नाम करने चले हो। नाम होगा भी तो तुम्हारे ही जैसे आलसी लोगों में। अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनते हो। जानता है तुम्हें कोई? विरादरी में नाम लेता है तुम्हारा कोई पञ्चायती में? पछता है तुम्हें कोई कि वरात में कितने घोड़े आने चाहिएँ, कैसा इन्तजाम होना चाहिए। उनके सामने जाकर कविता पढ़ो

तब जाने; लोग थू-थू न करें तो नाम बदल दूँ अपना। सवेरे-शाम कविता ही की बातें। कहा था कि बच्चों की ओर भी ध्यान दो। कौन कर जाएगा इनका व्याह ? मनलब के काम के लिए कहते हैं समय नहीं है। उसमे मिलना है, उसमे कुछ कहना है। बोलो तो आँखें निकालते हैं, गुस्मा होते हैं। कौन है पड़ोस में जो ऐसे फालतू काम करता है। बीसों बार लिखते समय इन कागजों को छीनकर फेंका होगा। बीसों बार फाड़ा होगा पर इनकी आदत नहीं जाती। ये फिर डकट्टे होते जा रहे हैं। इन्हें भी बिस्कुटवाले लालाजी ही को दे देना है। बेचारे एहसान तो मानेंगे। घर का कूड़ा हटेगा। न जाने यह 'सरस्वती' कौन है। और कब से आने लगी है। लड़के से पूछते ही रहते हैं, क्या सरस्वती आई थी ? इन्हें शर्म भी तो नहीं आती। तीस बरस लाँघ चुके हैं। देखती हूँ, सरस्वती कैसे मेरे घर में आती है ! धक्के देके न निकालूँ तो बात। होगी कोई आवारा औरत इन्हीं की जैसी। लड़का विचारा क्या जाने। और घर में बुलाने का क्या काम, खुद उससे मिल आएँ। भले घरों में ऐसा निर्लज्ज औरतों का आना ! राम-राम ! कहने में भी शर्म लगती है। अब जो इस सरस्वती का नाम लिया तो मुझसे बुरा कोई नहीं। चुटिया पकड़ के निकाल दूँगी घर से। बहुत बरदाश्त किया है मैंने। रोज पूछते हैं। यह सारी करतूत मुझसे न छिपेगी। हाँ, समझा लेना अपनी सरस्वती देवी को।”

मेरा क्रोध फिर से उभड़ आया। सहन करने की भी सीमा

होती है। क्या वह सब कुछ कहती रहे और मैं सुनता रहूँ। एक ओर इस मूर्खता पर हँसी आ जाती है। वह सरस्वती को कोई स्त्री समझे बैठी है। मैंने कड़कती हुई वाणी में कहा—

“अरे बे-अक्ल, सरस्वती तो अखबार का नाम है जो इलाहाबाद से आता है। कहाँ तक तुम्हारी मूर्खता को सहन करता रहे कोई? विस्कुटवाले ने या उसकी स्त्री ने घर में पाँच भी रक्खा तो सिर तोड़ दूँगा। जानती हो, क्रोध मेरा भी अच्छा नहीं होता। मेरे कागजों को या अखबारों को तुमने छुआ भी तो खैर मत समझना। अरे तुम किताबों तक को कूड़े में फेंक देना चाहती हो। तुम्हें कागजों से दुश्मनी है क्या? गव्वरदार? जो मेरे कमरे में आज से भाड़ू निकाली। मैं खुद निकाल लूँगा जब जरूरत होगी। अन्धेरे है कि मेरे सारे कागजों को चौपट कर दिया है। क्या जानो तुम, कविता क्या होती है, अखबार क्या होता है, सभा किसे कहते हैं। तुम्हारे बाप के यहाँ कपड़े की दुकान है। तुम्हें तो सारी चीजें कपड़े ही के भाव मालूम होती हैं। तुम्हारी सात पीढ़ियों में कोई पढ़ा-लिखा नहीं कि तुम्हें कुछ बोध होता अच्छे-बुरे का। रस्मी बाँधकर तुम्हें मेरे हवाले कर दिया है। गँवार कहीं की? अक्ल की दुश्मन……।”

“देखो जी! जवान सँभाल लेना। मेरे बाप के लिए कुछ कहा तो अच्छा न होगा। हाँ? उसने कुछ कूड़ा खिड़की से फेंकते हुए उग्र स्वर में कहा। भाड़ू की फटकार से कोई बरतन खनखनाकर सीढ़ियों तक लुढ़कता चला गया। पड़ोस के ठठेरे

की बकरी फिर म्याँ-आँ-आँ बोल उठी। एक सुर्ग ऊँची वांग लगा रहा था। मेरी पत्नी कहे जा रही थी—जानते हो, मेरे बाप ने कितने जेवर-कपड़े दिए हैं। आज तक चल रहे हैं। किस्मत अच्छी थी जान लो तुम्हारी, नहीं नानी याद आ जाती। बेचारे अब भी देते ही रहते हैं। थोड़ा-बहुत जो बन पड़ता है। एहसान भी तो नहीं मानते तुम। क्या किया है? घर की लुटिया डुबो दी। लाख का घर खाक में मिला दिया। नौकरी करते फिरते हो। बाप-दादों की लाज भी नहीं रक्खी। सेठ से चाकर बन गए। इसीलिए न कि काम नहीं किया जाता। दूकान रहती तो कैसे सोते रहते दिन चढ़े तक! मेरे बाप को कोसने चले हैं! इतने बिगड़ते किस पर हो? मैं क्या जानूँ सरस्वती औरत है कि अखबार! उस दिन तो अखबार का नाम भारत या महाभारत बताया था। आज कहते हो सरस्वती है। किसी और को बहकाना। अखबारों का नाम तो सरस्वती आज तक नहीं सुना। गँवार हूँ तो क्या। रहा पढ़ना-लिखना, पढ़े वह जिसे नौकरी करनी हो। पढ़े-लिखे नौकरी ही तो करते हैं। कौन-सा मीर मार लिया पढ़-लिख कर। सौ रुपल्ली लाते हो। इस महँगाई में पांच बच्चों का व्याह करोगे तो पता चलेगा। मैं तो खुद ही नहीं बोलती। रास्ते चलते लड़ाई कौन मोल ले। दबने की भी तो हद होती है। अपने कमरे में भाड़ लगा लोगे तो क्या होगा? मेरी बला से। और कूड़ा इकट्ठा करके डाल दूँ कहो तो। इन अखबारों को अपने सिर पर लाद लो। मैं भी जहाँ पड़ा है, पड़ा रहने दूंगी। अरे कोई भला आदमी देखे

तो क्या कहे ? कुत्ते भी भाड़कर बैठते हैं । धूल पड़ गई इस पढ़ने-लिखने पर । क्या मुंह लेकर बोलते हो ? नौ बजते होंगे । देर हो गई नौकरी पर जाने में तो सारी पढ़ाई याद आ जाएगी । मैं क्यों कहूँ ? मेरा क्या जाता है ; सोते रहो शाम तक ! आज कहा सो कहा । अब नाम भी न लूँगी ।”

अब मुझसे न रहा गया । एक करवट बदलते हुए मैंने कहा—“बाप के जेवर-कपड़े की धौंस मुझ पर न चलेगी । जब देखो तब बाप की दुहाई देती हो । क्या जरा-सी कपड़े की दूकान ! जेवर-कपड़े देकर ही तुम्हें मेरे गले से बाँध दिया है । आई थी तब मुझसे फुट भर लम्बी थी । मालूम है कुछ, बेचारे पिताजी सीधे आदमी थे कि जेवर-कपड़े लेकर मान गए । कौन ले जाता तुम्हें अपने घर में ! कौन-सा गुण है तुममें ? गाना-बजाना, नाचना, कपड़े सीना, पढ़ना-लिखना, सलीके से रहना ! एक भाङू लगाना जानती हो । मेरी जगह दूसरा होता तो क्या करता, मालूम है कुछ ? मैं चुप रहा जब तक रहा । बजने दो नौ बजते हैं तो । नौकरी की मुझे परवाह क्या है ? सिनेमा वाले हाथ जोड़ते हैं मेरे, मैं तो खुद नहीं जाता । अपने मुँह अपनी तारीफ क्या करूँ ।”

वह भनककर ऊपर की मञ्जिल से नीचे उतर आई । चढ़े हुए स्वर और क्रोध से तमतमाती हुई आकृति । मैंने लिहाफ से एक बार परिस्थिति का अवलोकन किया, जो बातों ही-बातों में विकृत हुई जा रही थी । उसने मेरे कमरे के दरवाजे में मुँह डालकर

कहा--“बम हो चुका ! डुबोदो घर की सब आबरू तुमने । यही वाकी रह गया नाचना, गाना, डफली हाथ में लेकर निकल जाया करो । मुझ से भी कहते हो कि नाचना-गाना नहीं आता । हमारा घर नहीं है कि लड़कियाँ नाचती-गाती फिरें । नाचना-गाना ही चाहिए तो किसी कोठे पर बैठने वाली को ले आते । क्यों किया था किसी भले आदमी से सम्बन्ध ? सब कुछ तुमने कर लिया । अब नाटक सिनेमों में नाचना ही वाकी रहा है । क्या कहे'गे ये जवान बच्चे कि ये हमारे बाप हैं । इसीलिए कविता लिखा करते हो ? अरे जवानी ढल चुकी है । बेटे-पोते धूल पटके'गे तुम्हारे ऊपर ? करो जो तुम्हारा जी चाहे । न जाने किसका मुँह देखा है सवेरेही-सवेरे । ये कलेश ! मेरी तो बोलने की पहले ही से आदत नहीं है । कोई दस भी कहले तो सुन लेती हूँ । पर यह अनहोनी तो नहीं देखी जाती । राम-राम ! सिनेमा उमर में एक बार देखा है । ऐसा नङ्गा नाच ! अपनी बहु-बेटियों को नचाते होंगे यह लोग ! और क्या है ? बाप रे बाप ! सचमुच की औरतें दीदे नचाती हैं । पराये मरदों के गले में बाहें डालती हैं । कोई इन्हें रोकता भी तो नहीं । क्या कुछ नहीं होता वहां, मकान में अंधेरा और कर लेते हैं । कैसे गन्दे गीत ! नाम लेने से शर्म आती है । होंगे वे भी तुम्हारे जैसे ! तभी तो ये करम करते हैं । तुम्हारी ही कमी है ! नाचना साड़ी पहन कर वहां । मुझे क्या है । लाज आएगी तो चली जाऊँगी अपने बाप के यहां ।... और हाँ... देखो ! मुंह तो देख लेने दो सुबह-ही-सुबह ! किसी दूसरे का मुंह दिख

जाएगा। काम करना है मुझे तो। कौन तुम्हारे मुंह लगे ! हटाओ लिहाफ...अरे हटाओ भी..." मैंने कहा, यह रोज मुँह देखने का क्या मतलब है ? देख लो किसी का भी। घर में क्या मैं ही अकेला हूँ। रोज इस सरदी में तड़क करती हो। कभी मुँह देख लेने दो, कभी पैर छू लेने दो। दुनिया भर की मूर्खता तुम्हीं में आकर इकट्ठी हो गई है। खाना खाओ तो पहले मुझे खा लेने के लिए मजदूर करती हो। सोना है, तो पहले मेरी ही वारी है। नहीं, नहीं दिखलाना है मुझे अपना मुँह। मेरा मुँह न हुआ तमाशा हो गया। जाओ देख लो घर में किसी का मुँह, हटो भी सोने दो मुझे.....

वह मेरा मुँह खोलने के लिए लिहाफ हटाए जा रही थी। मैं उसे ममेटता जा रहा था। न जाने क्यों मेरे मुँह से हँसी निकल पड़ी। वह कहती जा रही थी, ये तीस बरस कुएँ में डाल दिए। इतना भी नहीं मालूम। मुँह अपने आदमी के सिवा किसका देखा जाता है ? पाप-पुत्र कुछ नहीं जानते। ये सब दोष पढ़ने ही के हैं। कौन औरत है जो बिना पति को खिलाए खाती है। बिना मुँह देखे प्रातःकाल किसी और काम में लगती है। तुम न ममझो तो क्या हुआ ? देख लेने दो मुँह। हाय, मुझे देर हो रही है। अनेकों बार मेरे प्रयत्न करने पर भी उसने लिहाफ हटाकर दूर फेंक दिया। मैं कहता रहा, अरे-अरे, यह क्या हो रहा है। देखती नहीं, सरदी लग रही है मुझे। मैंने लिहाफ उठाकर पत्नी पर डाल दिया। वह यह कहती-कहती

चारपाई पर गिर पड़ी....“ओहो यह क्या दिल्लीगी है ! शर्म भी तो किसी की नहीं आती तुम्हें । बच्चे देखेंगे । बहू जाग रही है । मैं कहती हूँ काम करना है मुझे ।’ मेरी पत्नी के मुख पर हँसी की एक रेखा खिंच आई थी । आँखों के तेवर अवश्य अभी तक चढ़े हुए थे । पर वे हँसा की ज्योति में धुँधले पड़ते जा रहे थे । मैंने कहा, ‘रहने भी दो यह भाड़ ! देखती नहीं अभी दिन भी नहीं निकला है । तुम्हारे सिर पर तो चौबीसों घण्टे एक सनक चढ़ी रहती है ।’ वह फिर भनक उठी—सनक न चढ़ी रहती तो दिन में तारे दिख जाते ! कौन करता इतना काम ! मालूम भी है कुछ । सवेरे से शाम तक जुटी रहती हूँ ! उस पर न कोई एहसान न कोई जस ! कभी यह भी तुम्हारे मुँह से निकला है कि यह काम तुमने अच्छा किया है । अपनी ही अकल में डूबे रहते हो ।

जाने भी दो मुझे ! सारा काम सिर पर पड़ा है ; कहती हुई वह मुँह फुलाकर चलती बनी । मैंने कहा—क्यों नाराज हुई जा रही हो । अरे मैं हँसी में कह रहा था । अपने इन सफेद बालों की कसम ले लो मुझसे ! झूठ नहीं कहता । एक बात तो सुनती जाओ.....एक ही बात...।

वह दूसरी मस्जिद के कमरे से बोल रही थी—मेरे सफेद बाल ही सही, तुम तो जवान हो न ? सुन ली तुम्हारी बात ! देख ली तुम्हारी हँसी ! मूर्ख हो जो तुमसे बात करे । सम्भवतः वह रसोईघर में पहुँच चुकी थी ।

मैंने लिहाफ ओढ़ कर फिर एक नींद लेने का प्रयत्न किया । सरदी सचमुच आज पत्थरों के भी कलेजे कँपा रही थी ।

:: ५ ::

प्रतिकूल मार्ग

प्रोफेसर दीनानाथ ने कालिज से लौट कर भोजन किया और सोफे पर लेट गये। आल्मारी से एक पुस्तक निकाल कर उन्होंने आँख पर चश्मा चढ़ाया तथा तकिये को सिर से नीचे खींच कर पुस्तक खोली। यह कोई उपन्यास था। पहली दृष्टि में ही उसका विषय समझ कर पुस्तक वापस आल्मारी में रख दी। एक दूसरी पुस्तक उठाई और उसे भी देखकर रख दी। किसी पुस्तक में उन्हें आकर्षण प्रतीत नहीं हुआ। अन्त में एक पुराने मासिक पत्र को फाड़ल उठाई। उसका प्रथम पृष्ठ खोला ही था कि एक कागज पुस्तक के पृष्ठों में से निकल कर उनकी छाती पर आ गिरा। उन्होंने बिना इच्छा के ही उसे उठाया और फिर पुस्तक में रखने को हुए कि उनकी दृष्टि उस कागज के टुकड़े पर केन्द्रित हो गई। उसमें एक कविता की अपूर्ण पंक्तियाँ थीं जिन्हें लिखते लिखते ही सम्भव है उन्होंने छोड़ कर कागज को इस पुस्तक में रख दिया था। कविता की पंक्तियाँ नीली स्याही से लिखी गई थीं, जिन्हें बीच-बीच में से काट कर ऊपर नीचे कितने ही अक्षर लिख दिये गये थे। कविता को उन्होंने बड़ी उत्सुकता से देखा। एक बार रख दिया और फिर देखा। न जाने कौन-सा आकर्षण उन पंक्तियों में मिला कि वे उन पंक्तियों को अनेकों बार आदि से अन्त तक पढ़ गये। उसे कितनी ही बार उलट-पलट कर देखते-

रहे। वे कुछ गहन विचारों में डूब गये। उनकी भृकुटियों के बीच दो-तीन सीधी लकीरें खिंच गईं। अर्धनिमोलित नेत्रों से देर तक कुछ सोचते रहे। वह कागज का टुकड़ा उनकी उँगलियों में अटका रहा।

तकिये पर उनके सफेद बाल झूल रहे थे। मुख पर आयु की कितनी ही रेखायें अंकित थीं। उँगलियों की नसों के जाल उभरे हुए तथा अंग में जरावस्था के चिन्ह अधिकार जमा रहे थे। आकृति अपने समय में सुन्दर रही होगी, यह उनकी उठी हुई नाक, चमकीली आँखों और अंगों के सौष्टव से प्रतीत हो रहा था। कागज के टुकड़े पर लिखीं पंक्तियों को पुनः उन्होंने हृत्पङ्कम किया तथा उनकी दृष्टि किसी-निराकार बिन्दु से जा टकराने के लिए व्याकुल-सी हो उठी। धुंधली सी एक छाया, मिटी हुई सी एक रेखा, अस्पष्ट सी कोई घटना समय की अवधि को लांघती हुई उनके निकट आ खड़ी हुई। पूर्व स्मृतियों की एक श्रृङ्खला उनके मस्तिष्क में घूम गई। एक के पश्चात् एक चित्र आ आकर स्पष्ट होने लगा। प्रोफेसर दीनानाथ किसी विचित्र स्वप्न में खो गये।

पच्चीस वर्ष पूर्व की घटनायें जीवित सी होकर उनके सम्मुख आ खड़ी हुई जब वे प्रोफेसर नहीं थे, एक साधारण अध्यापक बन कर वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल में नियुक्त हुए थे, दो तीस शूशन करते थे, चालीस रुपया वेतन उनकी छोटी सी गृहस्थी के लिए अपर्याप्त न था। हिन्दी और इतिहास का विषय परीक्षा के दिनों

में पढ़ाने के लिए उन्हें अनेकों निमन्त्रण मिलते थे, साहित्य में उनकी रुचि थी, स्वयं भी कविता लिखते और साहित्य का मार्मिक विवेचन किया करते थे। परीक्षा के दिन निकट थे। उनके एक मित्र ने आग्रह किया कि मेरे एक सम्बन्धी हैं, उनकी लड़की को आप हिन्दी पढ़ा दिया करें, अगले साल १९०१० की परीक्षा में बैठेगी, साथ ही रत्न की परीक्षा भी देने का विचार है, साहित्य में उसकी बड़ी रुचि है। दीनानाथ को समय नहीं मिलता, यह उनके मित्र भी जानते थे, और दीनानाथ स्वयं विवश थे कि कौन-सा समय निकाल कर उनके आग्रह की पूर्ति करें। तब भी अपने संकोची स्वभाव के कारण वे नकारसूचक उत्तर न दे सके। 'मैं आने का प्रयत्न करूँगा', कहकर स्वीकृति दे दी।

विमला उनके मित्र के किसी सम्बन्धी की लड़की है, यह विचार उन्हें कई बार आया और एक दिन संध्या के धुंधले प्रकाश में, जब किसी व्यूशन पर से घर लौट रहे थे, विमला के भक्तान पर पहुँच गये।

दीनानाथ को तुलसी और सूर के पदों की व्याख्या करने में बड़ा आनन्द मिलता। मानस की धर्म-नीति तथा भक्तितत्व का विवेचन वे बड़ी सरल भाषा में किया करते थे। अलङ्कार और छन्दों के भिन्न-भिन्न रूपों का ज्ञान करते, आधुनिक तथा प्राचीन कविता-शैली का सारगर्भित निर्णय अनेक रीतियों से समझा कर करते। विमला की छोटी बहिन सरितः भी साहित्य पढ़ते समय आ खड़ी होती थी। उमाक विषय साहित्य न था, तो भी

साहित्य में उसकी स्वाभाविक रुचि थी। वह तुलसी की करुण पदावलियों को मनोयोग से सुनती, सूर के वात्सल्य रस का आनन्द लेती, प्राचीन और अर्वाचीन कविता के भेदों को जानने का प्रयत्न करती। दीनानाथ कभी-कभी कह उठते—‘सरिता ! अच्छा लगता है तुम्हें तुलसीदास का आत्म-निवेदन ? तुलसी सचमुच भक्त-शिरोमणि थे। उनकी कविता हिन्दी भाषा का प्राण है।’ सरिता मौन रहती। उसकी आंखों में किसी प्रकार के प्रति-वाद का भाव न देख कर वे पुनः अपने विषय पर आ जाते। वे बालकाण्ड से लेकर अरण्यकाण्ड तक पहुँच जाते। उन्हें कितना समय लग गया है भूल से जाते। विमला को यह लम्बी व्याख्या कभी-कभी असह्य हो उठती। वह सरिता की ओर देख कर कुछ खिन्नता प्रकट करती। सरिता हँस पड़ती। दीनानाथ की अविराम भाषण-मालाओं की गति हँसी की मन्द ध्वनि से टकरा कर रुक जाती। ‘बहुत समय हो गया’, कह कर वे घड़ी की ओर देखते और चल देते। उनके पीछे दोनों बहिनों की हँसी का विकसित स्वर कण्ठ में से दबता हुआ निकल कर वायु में फैल जाता।

दीनानाथ सोचते, ‘तीन घंटे हो चुके, अब दूसरी ट्यूशन पर जाने का समय ही कहाँ रहा है।’ सरिता भी कितनी विचित्र लड़की है, सुनने में कितना रस लेती है, दो घन्टे खड़ी ही रह जाती है, और विमला ? उसके मुख पर पंखे की हवा से उड़कर छित-राई हुई अलकें, हंसी में चाँदनी जैसा प्रकाश...वे लम्बी डगें भरते हुए रास्ता पार करते निकल जाते। कोई तांगा सामने से आता हुआ

बचकर निकल जाता, साइकिल वाले घन्टियों पर घन्टियां देते, मोटर वाले ब्रैक लगा कर दो-चार गालियाँ बक कर निकल जाते। दीनानाथ सोचते जाते, 'वह भी कैसी विचित्र लड़की है।' विमला को अलकें काली लकीरें बन कर उनकी आँखों में खिंच जातीं। और सरिता की शरारत भरी हँसी ! वे रास्ता पार करते जाते, रास्ता पार करते जाते।

घर पर पहुँचते ही कुछ गम्भीर से होकर लेट जाते। सोचते, और किस ट्यूशन पर जाना है और निर्णय करते, 'नहीं, कहीं नहीं जाना है।' उन्हें तुलसी की व्याख्या में क्या आनन्द मिलता है ! तीन घंटे से कम तो कहीं नहीं ठहरते ?

वे जल्दी उठने का प्रयत्न करते और सरिता कहती कि पाँच दज चुके हैं। उनका स्वप्न टूट जाता, वे व्याकुल से उठ कर चल देते। नित्य ही चार घंटे निकल जाते थे। एक-एक करके उन्होंने प्रायः सभी ट्यूशनें छोड़ दीं, केवल यही एक ट्यूशन रह गई थी।

वेणी को उँगलियों में लपेट कर घुमाती हुई सरिता आ खड़ी होती और विमला की हँसी दवे-दवे होठों पर थिरकती रहती। दीनानाथ भी न जाने क्यों मुस्करा जाते और कहते जाते, 'भगवान राम के अनन्य भक्त थे तुलसीदास, उनकी कविता साहित्य संसार में अलौकिक है, विनयपत्रिका में उनका हृदय फूट निकला है, करुण-रस की अभिव्यक्ति में उन्होंने अपने ही पश्चाताप के आंसू बहा कर भक्ति की निर्मल मन्दाकिनी में अवगाहन किया है। इस तरह उनकी दृष्टि विमला के मुख पर केन्द्रित हो जाती,

स्वच्छ स्फटिक की प्रतिमा के समान वह निश्चेष्ट अपलोक मनोयोग से मार्गों सुन रही है। वे सहसा विकल से हो उठते। उनकी आंखों में अलकों की काली लकीरें खिंच जाती, हँसी की चाँदनी बिखर जाती, यूथ से भटके हुए मृग की भांति वे चंचल से हो कर उठ खड़े होते। सरिता की हँसी भङ्गुत सी होकर दब जाती, विमला के होंठ थिरक कर रह जाते। दीनानाथ खोये से गम्भीर होकर घर पहुँचते, उनका स्वप्न चलता रहता, सरिता ने मेज पर हथेलियां टेक कर आगे झूलती हुई वेणी को पीछे की ओर फेंका, ललाट पर से आँखों पर उतरते हुए बालों को एक ओर किया, घूमते हुए पंखों ने हवा का प्रवाह विमला की ओर फेंका, सर-सराता हुआ उसकी साड़ी का एक छोर दीनानाथ की उंगलियों को स्पर्श कर गया, विमला ने उसे सम्हाला; दीनानाथ की दृष्टि विमला की आंखों से जा टकराई, हसरत भरी आंखों का उत्तर मुस्कान से मिला, विमला ने सरिता की ओर देखा, वही हँसी का प्रवाह फूट पड़ा—दीनानाथ ने घड़ी की ओर देखा—पांच बज चुके थे।

क्यों इतनी देर लग जाती है, क्यों शुभ में एक विचित्र सा परिवर्तन है, वे कोई निर्णायपूर्ण उत्तर न पा सके। विमला की मुस्कान, सरिता की हँसी, कितनी विनोदी लड़कियां हैं ये ! साहित्य से इन्हें सचमुच प्रेम है। महादेवी की कविताओं का विमला ने अच्छा अध्ययन किया है, पंखों की हवा का प्रवाह मार्गों, उनके शरीर का स्पर्श करता निकल गया, अलकों की लकीरें

आँखों में खिंच गईं। एक विचित्र-सी व्याकुलता हृदय में छा गई। पलकों की ओट में छिपी हँसती हुई दृष्टि चारों ओर अंकित सी हो गई। स्वप्न के एक-एक दृश्य स्पष्ट होते गये।

दीनानाथ ने निश्चय किया वह विमला को पढ़ाने न जायेंगे, चाहे उनके मित्र का आग्रह हो चाहे स्वयं विमला का। अन्तिम निश्चय पर एक आघात सा अनुभव किया, पर आज पांचवां दिन था, दीनानाथ विमला को पढ़ाने नहीं गये। उन्होंने सोचा, भी, इसमें विमला का क्या दोष? तब भी उनका अटल निश्चय था—दोष किसी का भी हो, वे न जायेंगे, कदापि नहीं। दीनानाथ अपने अन्तर से कुश्ती लड़ रहे थे, कभी वार खाली जाता और कभी प्रतिद्वन्दी की हार पर मुस्करा जाते।

नौकर ने आवाज लगाई, 'मास्टर साहब, आपको बुलाया है। बाबूजी, जरूर आइये', दीनानाथ निर्णय न कर सके क्या उत्तर दें। 'आता हूँ।' कह कर उन्होंने नौकर को जाने दिया, पर वे स्वयं क्या करें? अनेकों तर्क किये। मनुष्य कितना चंचल स्वभाव, अदूरदर्शी और अविवेकी होता है! वे न जायेंगे, मनुष्य का निर्णय एक बार होता है। वे मन को धिक्कारते रहे। आन्तरिक भावनाओं से लड़ते रहे। 'सौन्दर्य भगवान का स्वरूप है', यह भी सोचते रहे।

रात के तीन बजे थे। दीनानाथ की आँखें खुली थी। बहुत प्रयत्न किया पर नींद न आई। आसमान में अगणित तारे आँखें

फाड़-फाड़ कर जैसे उनकी ओर देख रहे थे। मनुष्य का निर्णय एक बार होता है। चांद की हँसी दवाये नहीं दब रही थी। वह जैसे खिलखिला कर हँस पड़ना चाहता था। एक चमगादड़ अपने पंखों को फड़फड़ाता आसमान में तीर की तरह उड़ता चला गया। रात अंधकार के अवगुण्ठन में छुपी सिसकियां ले रही थी, चांदनी का रंग फोका पड़ चुका था, पीपल के उस वृक्ष पर बैठा एक कौवा कर्कश ध्वनि में बोल उठा। नींद नहीं आ रही थी। दीनानाथ ने कितने ही प्रयत्न किये। मेज पर हथेली टेके सरिता। अलकों के आवरण में विमला का मुख ! बिजली के पंखे ने हवा का प्रवाह घुमाने हुए फेंका। विमला की अलकें उसके कंधों पर छितरा गईं। सेन्ट की हल्की सी महक चारों ओर फैल गई। विमला के होंठ हँसी की क्षीण रेखा से विकसित होकर विजड़ित हो गये। दीनानाथ ने उसके मुख की ओर एक बार देखा और पलकें नीची कर ली। सरिता ने कहा 'मास्टर साहब, साढ़े पांच बज रहे हैं।' वे चौंक पड़े। स्वप्न टूट गया। प्रातःकाल की ठण्डी हवा से वृक्ष भूम रहे थे। जीवन का कोलाहल जगत के अस्तित्व की घोषणा कर रहा था। एक भिन्न गाता हुआ निकला... जिसकी वाणी में करुणा भरी थी।

×

×

×

देहली से आने वाली गाड़ी की सवारियां ताँगों में बैठी चली आ रही थीं। कोई ताँगे वाला चिल्लाया, 'शाबाश बेटा !...जरा तेजी से कदम.....।' दीनानाथ ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर

परिस्थिति पर दृष्टिपात किया। एक द्वन्द उनके हृदय में चल रहा था, तब भी मनुष्य का निर्णय एक बार होता है वे कदापि विमला को पढ़ाने न जायेंगे। आज दसवां दिन था। गृहस्थ के आवश्यक कार्यों में उनकी आन्तरिक पीड़ा कुछ शान्ति अनुभव करने लगी। एक नई श्रृंखला भी उन्होंने कर ली, पर एक वेदना थी, जो हृदय को मसल कर रख देती थी। उसकी चोंख बहर निकलने से पहिले ही दीनानाथ व्याकुलता का अनुभव करते। कुछ खोये खोये स्वप्न चारों ओर बिखर जाते और तब एक गंभीर मौन उनके मुख पर अङ्कित हो जाता, अटल, अचल।

नौकर ने आवाज लगाई 'मास्टर साहब, आपको बुलाया है। जरूर आइये'। नौकर को क्या उत्तर दें? उन्होंने कहा, 'आता हूँ।' उनका अन्तर अवोध शिशु की तरह मचल रहा था। उन्होंने सोचा एक बार जाने में क्या हानि है और उसकी परीक्षा के दिन भी निकट हैं। किसी ने कहा, पर मनुष्य का निर्णय एक बार होता है। उन्होंने कहा, तब भी उसके उचित-अनुचित का विचार न करना क्या बुद्धिमानी है। उनकी प्रतीक्षा की दीवार एक क्षण में टूट कर नीचे आ गिरी।

विमला ने कहा, 'आप आये क्यों नहीं? सब काम अधूरा पड़ा है। इतिहास तो अभी ज्यों का त्यों रखा है। देखिये तो कितना काम है! दीनानाथ ने नतदृष्टि हो उत्तर दिया, 'यों ही कुछ तबियत अच्छी नहीं थी, स्कूल का काम, कई श्रृंखलें...'

'लेकिन अब तो रोज आयेंगे?' विमला ने कहा। क्यों नहीं,

सरिता ने हलकी हँसी अधरों पर अङ्कित करते हुए कहा '.....'
जरूर ।'

विमला की हँसी के प्रकाश में दीनानाथ डूब गए । उन्होंने अपराधी की भाँति एक दृष्टि उसके मुख पर डाली और फिर पलकें नीची कर लीं—वे बोले, 'हां, तो बाबर का हमला हिन्दु-स्तान पर हुआ । राजपूतों की हार, पानीपत की लड़ाई, हुमायूँ की बामारी, बाबर की अन्तिम घड़ियां, हुमायूँ का शासन-प्रबन्ध याद होना चाहिए । देख डालो, इसमें समझने की तो कोई बात नहीं है, बस ।' विमला ने कहा, और सूरदास का भ्रमरगीत भी तो अधूरा है । आपने पढ़ाते पढ़ाते छोड़ दिया था, गोपियों के प्रेम-योग के सम्मुख उद्धव का निर्गुण ब्रह्म सगुण बनने जा रहा था तब उद्धव ने किस प्रकार गोपियों को समझाया था । उद्धव ने तो नहीं, गोपियों ने ही उद्धव को सगुण ब्रह्म का वह स्वरूप बतलाया था, जिसके आगे उद्धव का निराकार, अविनाशी परब्रह्म निकम्मा प्रतीत होने लगा था । प्रेम भी बड़ा विचित्र होता है । उन्होंने कहा, 'दुष्यन्त-शकुन्तला, ऊषा-अनिरुद्ध, राधा-कृष्ण, सभी प्रेम के अमृत-सिन्धु का पान कर चुके हैं और प्रेम बहुत ही पवित्र वस्तु है । भक्ति प्रेम का ही दूसरा रूप है । प्रेम ईश्वर स्वरूप है... क्यों सरिता ?' 'जी आपको ही मालूम', कहते हुई सरिता ने शरारत भरी हँसी होठों पर अङ्कित कर ली । विमला ने भी एक फीकी हँसी से अपने मुख के विकारों को छुपाने का प्रयत्न किया । दीनानाथ मौन कुछ देर सोचते रहे । फिर बाबर की लड़ाई का प्रसङ्ग चल पड़ा ।

लखनऊ के एक सरकारी हाईस्कूल की विज्ञप्ति निकली कि एक योग्य शिक्षक की आवश्यकता है । दीनानाथ ने भी एक प्रार्थना-पत्र इस स्कूल में भेज दिया था । संयोग से इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई । सत्तर—चार—सौ की ग्रेड थी, रहने को स्थान तथा आवश्यकीय सुविधाएँ, किन्तु एक बन्धन था, जिसे तोड़ना उनके लिए कठिन प्रतीत होने लगा, और वह बन्धन था विमला की श्रृंखला, जिसे वे किसी भी मूल्य पर छोड़ने को प्रस्तुत न थे । बड़े प्रलोभन और उन्नति के मार्ग लखनऊ में उन्हें मिल जाते पर उनका हृदय स्वीकार कहाँ करता था कि वे जायें ।

उन्होंने विमला पर भी अपने इस विचार को प्रकट कर दिया था, जिसके उत्तर में उन्हें रुकने का कोई आभास न मिल रहा था पर तब भी उन्हें विमला की परीक्षा की चिन्ता है । वे स्वतः ही कह उठे, 'पर मैं नहीं जाऊंगा, तुम्हारी परीक्षा जो है ।' मौन रह कर विमला उनके किसी आभार को स्वीकार करती थी या नहीं, यह दीनानाथ न जान सके, पर कोई आकर्षण ऐसा है जो उनके पैरों में लोहे की जंजीर बन कर अटका हुआ था । वियश उन्होंने लखनऊ के निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया । कितनी कठिनाइयाँ और अनुत्तरदायित्व उन पर आया । यह केवल उन स्वप्नों के सामने अपना कोई मूल्य नहीं रखता था, जिनमें वे एक पीड़ा अनुभव करने पर भी एक अनुपम सुख था—विमला के मधुर हास्य का वह प्रकाश जिसमें उनकी आत्मा डूब जाया करती थी । कवि-हृदय दीनानाथ विमला के एक दृष्टिपात में अपने

परिश्रम का पुरस्कार पा लेते और कुछ दबी हुई वेदनाओं को अन्तर में छुपाये ही घर लौट जाते । रात्रि के स्वप्न दिन को दिखाई देते और दिन के रात्रि के अंधकार में अङ्कित हो जाते । उनका कवि-हृदय फूट पड़ता और अन्तर्व्यथा भाषा का रूप लेकर कागजों पर बिग्वर जाती । उनका हृदय उसमें खुल पड़ता, वह प्रकट हो जाता और तब वे एक शान्ति का अनुभव करते । उन्होंने अनेकों बार विचार किया कि वे इन कविताओं का विमला के सम्मुख रख दें, अपनी आन्तरिक व्यथाओं का एक मार्मिक विश्लेषण करके अपनी तृपित भावनाओं को शान्त कर लें, पर वह अवसर आया नहीं । उनके हाथ रुक जाते, हृदय धड़क जाना और वे दीर्घनिःश्वास की एक गहरी तथा धूमिल छाया निराश-भरे क्षणों पर अङ्कित करते हुए नत-दृष्टि घर की ओर चले जाते थे ।

विमला ने उन निःश्वासों की भाषा को कभी पढ़ा है, कभी उनके मूक प्रस्तावों पर दृष्टिपात किया है, यह जानने का दोनानाथ ने प्रयत्न नहीं किया । वे तो उस रूप पर, उस हल्की मुस्कान पर, उस विनोद पर हृदय हार चुके थे, जिसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति में उन्हें अनुपम रस की धारा बहती दिखलाई देती थी ।

विमला परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई, यह समाचार मिलने के एक ही महीने पश्चात विमला के पिताजी ने एक निमन्त्रण-पत्र दीनानाथ के हाथ में रखते हुए कहा, 'मास्टर साहब, जरूर आइयेगा, विमला की शादी है, इसी तृतिया को । लड़के को देख कर

आप भी खुश हो जायेंगे। एम० ए० पास कर चुका है। विमला की किस्मत जाग गई है। आपकी मेहनत सफल हो गई।' दीनानाथ के कानों ने जैसे कुछ न सुना हो, वे बोले, 'गे', विमला की शादी...' और फिर एक फीकी हँसी हँसते हुए वे उस गली के मोड़ पर से निकल गये जो उनके घर के रास्ते की ओर थी।

विमला के पिताजी का एक-एक अक्षर मानों पुनः वायु में ध्वनित हो-होकर कानों में आ रहा था। दीनानाथ का हृदय टूट सा गया। उन्हें जैसे किसी ने बहुत ऊँचे से गिरा दिया हो। उन्होंने कितने ही तर्कवितर्कों से हृदय को सान्त्वना दी। कितने ही सन्तोष के उदाहरण उपस्थित किये, पर उनके अन्तर में बैठा कोई सिसकियां ले रहा था। निराशा की अन्तिम ज्वाला से सब कुछ भस्म हो गया था।

नौकर ने आकर विमला के पिताजी से और फिर विमला से कहा, 'मास्टरजी तो देहली चले गये हैं। आज दो रोज हुए। उनके घर वाले, मां, वच्चे सब के सब मकान में ताला लगा है। एक पड़ोस ने बताया है।' विमला ने सम्भव है कारण जान लिया हो, पर उसने क्या अनुभव किया, यह कोई नहीं जानता। मास्टरजी के चले जाने की बात सुन कर सरिता को हँसी नहीं आई और न विमला ने इस संबंध में एक शब्द कहा। शादी हो गई। विमला ससुराल चली गई। सरिता की स्मृतियों में मास्टर साहब की निराशा भरी आंखें अब भी अङ्कित हैं। उस मेज पर वह अब भी हथेली टेक कर खड़ी होती है पर हँसती नहीं। वेणो

की पीछे का ओर फेंक कर गर्व से अपनी सड़ी कन्धे पर समेट कर एक विचित्र भङ्गिमा से खड़ी नहीं हो पाती। उस बिजली के पङ्के की डोरी घिस चुकी है। और उसकी आकृति मिट्टी की एक तह जम जाने से विचित्र सी हो गई है। सरिता सूरदास का भ्रमरगीत अब भी पढ़ती है, बाघर का हिन्दुस्तान पर हमला, राजपूतों की हार, इतिहास में कोई परिवर्तन नहीं, पर उसके हृदय में कुछ परिवर्तन अवश्य है जो न कभी दीनानाथ ने जाना और न विमला ने। उसके भी परीक्षा के दिन निकट हैं। वह घड़ी पांच बजाती है, पर उसके पांच बजा देने का किसी को दुःख नहीं है न उन दीवारों से मधुर हंसी की झंकारें टकराती हैं न निराशा और हसरत भरी निगाहें उन दीवारों के चारों ओर चकराटती हैं।

दीनानाथ के विमला के प्रति कुछ मानसिक उद्गार कविता के रूप में कागजों पर बिखर गये थे। उनके अनेक संग्रहों ने एक पुस्तक जैसा रूप ले लिया था। वे कवितायें दीनानाथ की स्मृतियों को नवीन रूप दे देती थीं और वे एक मर्मन्तिक पीड़ा अनुभव करते हुए दिल पकड़ कर रह जाते थे। एक रात्रि की अन्तिम घड़ियों में जब उनकी आंखों में विमला की रूपनिधि के स्वप्न उतर रहे थे, वियोग की कथा विकल बना रही थी, उन कविताओं को एक साथ एक ही मुहूर्त में जला कर दीनानाथ ने उनकी भस्म उड़ा दी। एक भी कविता अपने पास न रखी। वे उनका करते भी क्या। जिन कविताओं में एक निराश प्रेमी की कामनायें छटपटा रही थीं। कवि के सौन्दर्योपासक हृदय ने जिन पंक्तियों

में रूप का ससार बसा दिया था, उसका अब क्या उपयोग ? क्या महत्व ? और यदि कुछ है भी तो वह दीनानाथ समाप्त कर देना चाहते थे, सदा के लिए। फिर विमला की याद उनके पहलू में कहीं छिपी न रह जाय। कहीं विग्वरी न रह जाय।

विमला का गृहस्थ जीवन आनन्दमय है। सब कुछ उसे प्राप्त है। कभी-कभी दीनानाथ का एक छायाचित्र कल्पना में तस्वीर बनकर आंखों में छा जाता है। वह नतदृष्टि अपराधी के समान शरमाया-शरमाया मास्टर जिसकी आंखों में अन्तर के भाव कभी सङ्केत बन कर भी प्रकट नहीं हुए, अपने दर्द की कभी फरियाद नहीं की। विमला दूसरे ही जगह सांसारिक कार्यों में व्यस्त हो जाती और इस तरह मास्टर का छाया-चित्र भी अब उसकी आंखों में धूमिल हो चला है। जीवन की रोमाञ्चकारी घटनाओं में उसकी बिसात ही क्या थी। मास्टर भी मास्टर नहीं रहा, उसका हृदय भी वह हृदय नहीं रहा जिसमें विमला की याद तड़पती रहती थी और न सरिता के मुख पर हँसी।

दीनानाथ देहली के कालिज में प्रोफेसर हो गये। बंगला है, कार है, नौकर है, गृहस्थी है। आज वह पच्चीस वर्ष पुरानी घटना नवीन होकर आ उपस्थित हुई थी। यह कविता जो इस कागज के टुकड़े पर लिखी थी, दीनानाथ की रचना थी। केवल यही एक रचना पुस्तक में छिपी रह जाने के कारण बच रही थी। प्रोफेसर दीनानाथ ने मास्टर दीनानाथ की इस रचना को बड़ी गम्भीरता से देखा, बड़े मनोयोग से। वे सोफे से उठकर खड़े

हो गये और कमरे में इधर-उधर टहललने लगे। वेग से उन के पांव उठ रहे थे। इस स्वप्न की एक-एक घटना में मास्टर दीनानाथ की व्यथा उनके हृदय को नीचे डाल रही थी।

बूढ़े प्रोफेसर ने आवाज लगाई, 'जग्गु ? एक ग्लास पानी'। प्रोफेसर के होठ सूख रहे थे, हृदय की धड़कन वेग से बढ़ रही थी, विमला के मुख पर छितराई हुई अलकें लकीरें सी बन कर उसकी आंखों में खिंच गई, हँसी की चांदनी बिखर गई, सरिता की दबी-दबी हँसी कमरे में भ्रुकृत हो उठी, विजली के पंखे ने हवा का प्रहार विमला की ओर फेंका और उसकी साड़ी कन्धे से नीचे तक उतर आई। घड़ी ने अब पाँच बजा दिये। प्रोफेसर का स्वप्न पक लम्बी सांस के साथ टूट गया। वे पुनः सोफे पर बैठ गये। उन्होंने स्वतः ही कहा आंखें सामने दीवार पर केन्द्रित करते हुए—मनुष्य भी कितना अबिवेकी, कितना अदूरदर्शी, कितना भावुक होता है, और वे फिर लेट गये, न जाने क्या सोचते हुए, क्या कहते हुए, क्या देखते हुये।

:: ६ ::

कलाकार

उसके दोनों हाथों में चित्रों के दो बन्धल थे। एक बस्ता जैसा बगल में दबाये वह भटका हुआ सा युवक, जिसकी टोपी के नीचे से बाल बिखरे हुये से बाहर निकल रहे थे, कोट के बटन खुले,

दाढ़ी बड़ी दई, मैले कपड़े और टूटे जूते पैरों के साथ नहीं रहे थे। उसने चारों ओर एक बार देखा। रोड़ का नाम एक आदमी से पूछा और वकील कमलकिशोर खन्ना की विशाल कोटी के सामने आ खड़ा हुआ। चौकीदार ने प्रश्न किया, 'कहां जाना है, किसे पूछते हो?' वह बोला, 'वकील साहब से मिलना है। जरा इत्तला करदो भाई, बड़ी दूर से आ रहा हूँ।' चौकीदार ने कुछ सोच कर कहा, 'अभी तो सरकार नहीं मिलेंगे कल सबेरे आजाओ। इत्तला कर दूंगा।' युवक ने फिर कहा, 'भाई अभी कर देते तो बड़ी कृपा थी। दूर मकान है इनका शहर से भीलों दूर।'।

'तब क्या तुम्हारे लिये शहर में मकान बनवाते! कह दिया एक बार कल आना सो रहे हैं सरकार अभी।' युवक ने निराश हो कर अपने सिर का पसीना पोछा और जिधर से आया था उधर ही चल दिया।

दूसरे दिन प्रातः काल वही युवक वकील साहब के द्वार पर खड़ा था। चौकीदार ने कहा, 'बैठो कहे देता हूँ। अपना नाम लिख दो।' उसने नाम लिख दिया। चौकीदार ने संकेत किया चले जाओ ऊपर, वह उन सीढ़ियों से होते हुये बगल वाले कमरे में.....

युवक अपने बन्डल और बस्ते लेकर वकील साहब के पास पहुंच गया। उन्होंने एक कागजों की फाईल अल्मारी में रखते हुये कहा, चश्मे को किंचित ऊपर उठा कर—

'क्या है? क्या चाहते हो?'

युवक ने कहा 'मैं कुछ चित्र आपको दिखाना चाहता हूं यदि आप आज्ञा दें !'

'चित्र, कैसे चित्र...क्या मतलब है तुम्हारा, किसका चित्र !' आश्चर्य से युवक की ओर देखा ।

वह बोला, 'जी...मेरे पास कुछ साहित्यिक विषय के चित्र हैं । मेघदूत पर बने हुये कुछ रामायण पर-कुछ गीत गोविन्द पर-और भी अनेकों विषय हैं ।'

'अच्छा तो मैं क्या करूँ, मैंने तो मँगवाये नहीं थे तुमसे ये चित्र ? तुम्हारा मतलब क्या है ?'

'जी मैं चाहता हूँ...आप कुछ चित्र खरीद लें बड़े सुन्दर हैं भाव पूर्ण ।'

मैं खरीद लूँ...क्यों खरीद लूँ...मुझे जरूरत नहीं आखिर खरीद क्यों लूँ ? अच्छा जाइये आप मेरे पास इन सब बेकार बातों के लिये समय नहीं हैं' उन्होंने अलमारी से एक फाईल और निकाली, और कोई कागज ढूँढने में व्यस्त हो गये ।

युवक अब भी खड़ा था । उसने कहा, 'साहब एक चित्र तो खरीद लें । वकील साहब ने झल्ला कर कहा, 'जाओगे या नहीं... मेहरा ! उनकी कर्कश ध्वनि से वह कमरा गूज उठा...उनकी उग्र आकृति से युवक सहम सा गया । वह तुरन्त अपने बंडल समेट कर चल दिया । सीढ़ियों के निकट पहुँचा ही था कि एक सुरीला स्वर उसके कानों में आया—'ठहरिये तो...क्या है आपके पास ?'

युवक ने मुड़ कर देखा एक यौवन की प्रथम किरण-सी, चांदनी रात के उज्ज्वल प्रकाश की प्रतिमा सी, आँखों में चञ्चल कटाक्ष और अधरों पर मुसकान बिखेरती युवती हैं। उसकी काली रेशमीन साड़ी पर टँगे हुये जरी के फूलों से वह रात्रि की प्रतिकृति सी दिखलाई पड़ती थी। उसकी भूलती हुई वेणी में सुनहरी क्लिप काले बादलों में बिजली की रेखा से चमकर रहे थे। यह वकील साहब की इकलौती पुत्री थी। सुभद्रा बी० ए० में पढ़ती थी। साहित्य से प्रेम था। वह वकील साहब के गर्जन को सुन कर ऊपर वाले कमरे से उतर आई भी घटना की स्थिति जानने के लिए।

सुभद्रा ने पुनः कहा, 'आइये, ऊपर आजाइये' उसके कानों के भूलते हुये ईयरिंग कपोलों से टकरा गये। उत्सुक से थे उसके नेत्र।

युवक ने डरते हुये निकट जाकर कहा... 'जी... मेरे पास कुछ चित्र हैं'... कह कर वह मौन खड़ा रहा।

सुभद्रा ने कहा... 'चित्र हैं... अरे खड़े क्यों हैं आप, बैठिये, मुझे चित्रों से बड़ा प्रेम है वह देखिये एक चित्र, मेरी कण सहेली ने बनाकर मुझे दिया है। मुझे भी कुछ रेखायें खचले का शौक है... आप... आप क्या यहीं रहते हैं लाहौर में ही...'

युवक ने कहा... 'जी... यहां तो नहीं रहता, राजपूताने में रहता हूँ... कुछ दिनों से यहां हूँ'

'अच्छा तो दिखलाइये अपने चित्र... किस विषय के हैं...'

युवक ने कहा—‘यही मेघदूत, कादम्बरी, गीत गोविन्द, रामायण आदि पर।’

‘तब तो बड़े अच्छे होंगे...’ उसने आँखों में हंसी की रेखाएँ भरते हुये कहा, उत्सुक नेत्रों से ‘अच्छा दिखाईये सब के सब।

युवक ने देखा सुभद्रा के अंग अंग से सौन्दर्य की प्रभा फूटी पड़ती है। खुली हुई गोल भुजाएँ गौर वर्ण तथा कोमल हैं। हसते समय उज्ज्वल दांतों की पंक्तियों से धवलता का आवरण सा अङ्कित हो जाता है। वस्त्रों में से प्रत्येक अङ्ग का सौष्ठव अपनी आकृति पर मानों इतराया हुआ सा, अभिमान करता सा दिखाई दे जाता है। युवक की आंखें मुग्ध उस युवती का सौन्दर्य पान कर रही थी। वह मन्त्रमुग्ध सा सुधिहीन सा उसकी ओर देखता रहा। न चित्र ही दिखलाये न कोई शब्द ही मुख से कहा उसकी दृष्टि नीचे से उपर तक उस अलौकिक सौन्दर्य का अध्ययन सा कर रही थी।

सुभद्रा ने उस मौन को भङ्ग करते हुये कहा ‘आप सोच क्या रहे हैं ? दिखलाये अपने चित्र...’ उसने चौंक कर चेतना को एकत्रित करके कहा।

‘हां हां देखिये ये चित्र हैं...’ आपही के सामने तो... हैं’ कह कर वह फिर किसा विचार में डूब गया। वह जैसे स्वप्न देख रहा है... उसे कादम्बरी के क्रीडा-कानन का बहवर्णन याद आ रहा था जिसमें कादम्बरी पर्यङ्क पर शयन कर रही थी. उसका प्रतिविम्ब झीवारों

में पृथ्वी पर और आकाश में भी, चित्रित सा दिखाई पड़ता था उसकी सौन्दर्य छटा के आगे मुक्ता कलापों की प्रभा फीकी पड़ रही थी। अनेकों चन्द्र मण्डलों की कांति उसके चारों ओर बिखरी पड़ती थी। वह वसन्त की सुकुमार कलिका सी, सुर सरिता की फेन राशि की शोभा सी थी... उसके चारों ओर। सुभद्रा ने फिर उसके स्वप्न जालों को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने कहा, 'चित्र किसका है ? क्या विषय है ?' वह बोला कुछ सतर्क सा हो कर अपने आपको सम्हाल कर:—

‘जी—ये हैं राधा कृष्ण के वियोग में, यह लता मण्डप विरह के ताप से झुलसे हुए, यह बिखरे हुये कमल कोष जो मुरझा गये हैं, ये अस्त व्यस्त आभूषण, ये इनके कपोलों पर अभ्र विन्दुओं का जाल-ये बहता हुआ स्त्रोत-ये मौन पक्षी, ये चकित मृगियों का युथ, ये चन्द्रमा और ये कुसुम सायक कामदेव, ये कानों तक खेंची प्रत्यञ्चा ये वायु से प्रकम्पित कदली पत्र... ये हनुमों पर झपटते हुए मधुकर-ये वसन्त दूत कोकिल, ये वर्षा का सन्देश-वाहक चातक-ये-चक्रवाक-मिथुन, ये चकोर, ये अलसाये हुए निद्रित से प्रभात के पक्षी समूह।

वह कहता गया निरन्तर निर्बाध गति से छन्दों की मालायें गूँथता हुआ, साहित्य के अङ्ग अङ्ग का विवेचन करता हुआ। उसने राधा के चित्र में विरह के गीत अङ्कित किये थे।

सुभद्रा-मुग्ध सी वह वर्णन सुनती रही। चित्र देखती रही। वह एक के बाद एक चित्र दिखाता और उसका परिचय देता

उसके वर्णन में कवित्व था। उसकी भाषा में रस था।

‘क्या है सुभद्रा, क्या हो रहा है?’ वकील साहब का गम्भीर घोष सुनाई दिया। सुभद्रा ने चौंक कर देखा। युवक भी डर सा गया। वकील साहब की तीव्र दृष्टि चश्मे के लैन्सों से फूट फूट कर निकल रही थी। उनकी भृकुटि पर बल था।

सुभद्रा ने हँसी से अधरो पर विकास अङ्कित करते हुए कहा ‘पिताजी ये बड़े सुन्दर चित्र हैं...हम खरीदेंगे। देखिये तो।...’

वकील साहब ने कहा—उग्ररूपा धारण करते हुए, ‘क्या होगा इसका, ऊँह नहीं देखना मुझे। वे चले गये कुछ क्रोध सा प्रकट करते।

सुभद्रा ने कहा, ‘अच्छा ये चार चित्र लिये लेती हूँ। कितने का चेक देदूँ बताइये?’

युवक ने मुस्कराहट की रेखा को दबाये हुये कहा, जो इच्छा हो आप की-चित्रों का मूल्य नहीं होता। पुरस्कार और भेंट होती है-जो भी श्रद्धापूर्वक यथा सामर्थ्य दी जाय।

सुभद्रा ने कहा, ‘फिर भी मैं इस विषय से परिचित नहीं हूँ। कदाचित् अपनी इच्छा से कुछ कम ही दे बैठूँ। आपका कोई संकेत मूल्य के विषय में आवश्यक चाहती हूँ।’

युवक ने कहा, ‘आप कम की चिन्ता न करें मुझे अस्वीकार न होगा।’

वह बोली—‘छै सौ...अच्छा आठ सौ लिख देती हूँ। कज तो नहीं हैं...आप कुछ बता देते...’

‘कम नहीं ये तो बहुत अधिक हैं। आप मुझे चार सौ दें यही इनका उचित मूल्य है।’

‘जी अब तो मैंने लिख दिया है।’ सुभद्रा ने कहा।

वकील साहब ने चैक पर हस्ताक्षर करने से बहुत मना किया पर ये उनकी पुत्री का अप्रह था जो उनके जीवन की एकमात्र ज्योति थी।

युवक ने काँपते हाथों से चैक ले लिया। अपना बन्डल लपेटा। एक बार सुभद्रा की ओर देखा—कैसी दया है इन आँखों में, कैसी परोपकार की भावना है, कैसा विलक्षण कला-प्रेम है, कैसी कुशाग्र बुद्धि है, कैसा निरभिमान हृदय है, कैसा स्वर्गीय सौन्दर्य ! ये चकित मृगियों से नेत्र, कुसुम कली से अधर उन पर हास की आकर्षण रेखा। उसने फिर देखा और फिर एक बार देखा। अच्छा ‘नमस्कार’, दोनों हाथों को ललाट तक ऊपर ले जाते हुए उसने सादर अभिवादन किया। युवक चला पर उसके पाँव नहीं रुक रहे थे जैसे कुछ खो चला, कुछ दे चला, कुछ छोड़ चला है। सुभद्रा ने जाते समय कहा था फिर दर्शन देने की कृपा करें—उसके नेत्रों में जैसे भक्ति थी, श्रद्धा थी, आदर था।

आठ सौ रुपये के नोट ! युवक ने सोचा ये चित्रों का मूल्य है अथवा दया की भीख है ! पुरस्कार है या श्रद्धाञ्जलि है ! कला की उपासना है या मनुष्य का मनुष्य के प्रति होने वाला कर्तव्य है।

मूल्य नहीं हो सकता कारण कि मूल्य मन मांगा और उससे

भी अधिक नहीं मिला करता। दया इसलिए नहीं थी कि आदर से, आग्रह से, विनीत भाव से दिया गया है। पुरस्कार भी नहीं। तब क्या यह श्रद्धाञ्जलि है। वह निर्णय न कर सका क्या है। किस रूप में यह अर्थ मैंने स्वीकार किया है।

वह अपने अन्तर में सौन्दर्यमयी, दयामयी, श्रद्धामयी मूर्ति को अङ्कित देखता है। कल्पनाओं में वह जाता है। वह सोचता है मनुष्यता का यह भी एक रूप है। मनुष्यता की वह भी एक कल्पना है। उसकी विनय में हृदय की शुद्धता थी। उसके आदर में निरभिमानता की पराक्वाष्टा थी। उस युवक ने रुपयों को न खरच किया न किसी को दिया। वे उसके हृदय के निकट कोट की जेब में रखे हैं। एक यादगार की भांति, एक अमानत की भांति ! वह इन रुपयों का क्या करे निश्चय न कर सकता था। उसका मन कहता यह पारिश्रमिक है। यह तुम्हारी साधना का पुरस्कार है और यह समर्पण है। आत्मा कहती, यह मनुष्य के हृदय की सद्भावना का एक उदाहरण है। प्रत्येक मानव के लिए यही मार्ग है। मानव की मानव के प्रति यही कर्तव्य-परायणता है। 'फिर दर्शन दें' उसके हृदय में एक ध्वनि उठती और उठ कर रह जाती।

उसने निश्चय किया था कि सुभद्रा से फिर एक बार मिलूँगा, अपने चित्र दिखाऊँगा और यदि फिर उसने रुपये दिए तब... क्या होगा ? वह सोचता न लूँगा, वह सोचता ले लूँगा। उस दिन उसने वकील साहब की कोठी की ओर चलने का विचार किया

पर न जाने क्या सोच कर न जा सका । सुभद्रा ने चित्रों को फ्रेम कराके अलमारी में रख दिया । उसे वह सरल चित्त-सा, भावुक-सा, कवि-सा, युवक याद आजाता; वह सोचती उसने मनुष्यता के नाने सङ्कोच से चित्रों का मूल्य कम लिया है । वह कितना सङ्कोची था, कितना निर्लोभ था; चित्रों का मूल्य अधिक है । कोई कह सकता है 'सम्भव है वह कभी फिर आजाय' पर वह न आवेगा । किस लिए क्या चित्र बेचने ! उसका अन्तर कहता तब क्या करने ? वह भ्रम्यम् न जानती थी इसका क्या उत्तर है ? वह मुझे क्यों देखता था ? क्यों रुक पर उसकी दृष्टि रुक उठ जाती थी ? वह जसे लज्जा से छूई गई ।

एक मास पश्चात् सुभद्रा अपने कमरे में सोफे पर बैठी एक पुस्तक का अध्ययन कर रही थी । सैन्ट की हलकी सुगन्धि कमरे में बस रही थी । मेज पर दो ताजा फूलों के गुलदस्ते रखे थे । वैभव की सभी सामग्री उस कमरे में यथास्थान सजी हुई थी । नौकर ने आकर कहा, बेटी सरकार गुला रहे हैं ।

सुभद्रा ने आकर प्रणाम किया ।

वकील साहब ने कुछ गहन विचारों में डूब कर कहा, सुभद्रा ये मनीआर्डर देखो किसने भेजा है । अभी अभी पोस्टमैन देकर गया है । आठ सौ रुपये हैं, न तो नाम है न पता है, क्या जाने किसने भेज दिया है, अजब आदमी है !

सुभद्रा ने 'आठ सौ' एक बार कहा, चिंतन की रेखाएँ उसके ललाट पर थीं । उसे वह युवक याद आ गया, 'यह मूल्य मैं न

लूँगा अधिक है।' सुभद्रा के मुख पर हल्का सा निश्वास निकल गया। उसने एक क्षण मौन रह कर कहा, 'पिताजी ये उस..... उस आदमी ने लौटा दिये हैं जो तसवीरें बेच कर गया था। आप नहीं ले रहे थे। वह उस दिन जो आगया था।'।

वकील साहब ने चश्मे को ऊपर उठाते हुए आँखें निकाल कर कहा, 'अरे कैसा आदमी है' लौटा क्यों दिये उसने।' रहने दो पागल होगा कोई। रुपये लेकर लौटाता है कोई ?

सुभद्रा ने कहा, 'पागल नहीं पिताजी ! सब आदमी एक तरह के नहीं होते हैं। सब के विचारों में समानता नहीं होती..... वह था कोई सच्चा कलाकार। ये लोग पैसों की दुनियाँ का महत्व तथा उसका मूल्य कुछ नहीं समझते। उनकी दुनियाँ एक निराली दुनियाँ होती है।'।

'हूँ होगा.....अजीब आदमी था.....उसको लौटा देने से फायदा क्या था ?'

'सब चीजों में फायदा ही नहीं देखा जाता पिताजी, बहुत सी बातें बे फायदा भी होती हैं।' वह उठ कर अपने कमरे में चली गई। उसने अनेकों बार विचार किया, क्या वह फिर आ सकता है। उसका पता भा तो नहीं, कहाँ रहता है, कौन है ? वह खिन्न सी एक सोफे पर बैठ गई.....उन तसवीरों को वह देखती है और वह युवक उसे याद आजाता है। उसने कहा था चित्रों का मूल्य ही क्या है ? इनका कोई मूल्य नहीं होता ? चित्र बेचे नहीं जाते .. कला का मूल्य पैसों में नहीं आँका जाता .. वह.....

भूला हुआ-सा भटका हुआ-सा भावुक युवक ? उसने देखा था मेरी ओर ? समय ने सुभद्रा को जीवन के एक अङ्ग से दूसरे अङ्ग तक पहुँचा दिया । वे तसवीरें अब भी उसके साथ थी । सुभद्रा के पास वैभव था, मान था, सुख था ; पर एक अभाव ने उसके मन में उसके अन्तर में स्थान पा लिया था "यदि वह युवक पुनः आजाता तो मैं उसे चित्रों का मूल्य अवश्य देना जो भी वह माँगता पर वह न आया । और न आने की कोई आशा ?

उसकी आँखों में उस युवक का चित्र अब भी अङ्कित है । इसके हृदय में एक पीड़ा सी उठती है और आँखों में छा जाती है । पर उस अभाव की पूर्ति वह जीवन पर्यन्त न कर सकी ।

वकील साहब कभी मित्रों में कहते हैं, "वह भी अजब आदमी था तसवीरें बेचने आया था, रुपये न जाने क्यों लौटा दिये ?"

रुपये भी लौटा दिये जाते हैं ? लेकर ? उन्हें आश्चर्य होता है, अब भी ।



दण्ड-व्यवस्था

अपार जन-समूह से प्रदर्शनी-भवन का वह विशाल प्रांगण परिपूर्ण था। नागरिकों की मण्डलियां चारों ओर से उमड़-उमड़ कर चली आ रही थीं। सभी के मुख पर हर्ष, आश्चर्य और आनन्द की अलौकिक प्रभा अंकित थी। चित्रकार विश्वरूप की कला-साधना को देख कर कला-प्रेमियों के हृदय-कमल खिल उठे थे। प्रशंसात्मक शब्दों से जिह्वाओं ने अपनी शक्ति की मानों इति कर दी थी। चित्रकला के सुन्दर उदाहरणों का ऐसा महान प्रदर्शन पाटलिपुत्र के नागरिकों ने प्रथम बार ही देखा था। एक ही समय में इतना संचित कला-कोष, एक ही स्थान में एक ही मनुष्य की इतनी कला-कृतियां, सब के आश्चर्य का कारण बन गया था। अवाल-वृद्ध चित्रकार विश्वरूप की इन कला-कृतियों को, इन देव-दुर्लभ आलेखनों को, देख कर अपने चक्षुओं को सफल करने का एक दैवी वरदान मान रहे थे, जिनमें नव-रसों की सुरसरि मानों अबाध गति से बह रही थी, आनन्द की हिलोरे उठ-उठ कर मानव-हृद्यों को आप्लावित कर रही थीं।

प्रदर्शनी के उस विस्तृत भवन में जनता के कोलाहल-पूर्ण समारोह को देखकर चित्रकार ने भी अपनी साधना को आज सफल हुआ मान लिया था। उसके नेत्रों में सफलता की वह चमक थी, जो प्रत्येक साधक को अपने सिद्धि-लाभ के समय हुआ

करती है। उसके श्रवण-पुट प्रशसा-सूचक शब्दों की ध्वनि से बधिर-से हो गए थे। श्रद्धांजलियों ने उसके चरणों में गिर कर स्वीकृति की भित्ति मांगी थी। साधना-वृद्धि के आशीर्वादों से मानों वह आच्छन्न-सा हो गया था। प्रत्येक चक्षु ने उसे चकित दृष्टि से देखा तथा प्रत्येक हृदय ने उसको भक्ति-कुसुमांजलि समर्पित की थी। राज्य के शूर, सामन्त, उच्च पदाधिकारी आदि सभी वर्गों और श्रेणियों के जनो की उस प्रदर्शनी में उपस्थिति थी। शिल्पी विश्वरूप सर्वसम्पत्ति से देश का महान कलाकार स्वीकृत किया गया था। मानपत्रों और पुरस्कारों से उसका अंक भर दिया गया था।

सहसा गगन-मण्डल को गुंजाता हुआ एक जय-घोष सुनाई दिया। जनता को इस जय-घोष ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। सभी के नेत्र प्रदर्शनी के मार्ग की ओर बिछ गए। सभी के कानों में यह ध्वनि पहुंच गई—‘महाभित्तु, अखिल लोकोद्धारक, त्रिकाल-दर्शी, महासुनि शान्तिपुत्र विजयभास्कराचार्य की जय ! भगवान शान्तिपुत्र की जय !’

भित्तुओं के अपार समुदाय के साथ राजगुरु शान्तिपुत्र स्वयं चले आ रहे थे। उनके अभिवादन के लिए सहस्रों मस्तक एक साथ आनत हो गए। सहस्रों शरीर एक साथ प्रणाम के लिए दण्डायमान उनके चरणों में लोट गए। जनता का कंलाहल शान्ति में परिवर्तित हो गया। मौन, निःशब्द जन-समूह उनके दर्शनों के लिए उत्सुक नेत्रों को विस्फारित किए एकटक देख रहा था। कपाल पर कपाल ऊंचे उठ रहे थे। वे सबको आशीर्वाद

देते आनत दृष्टि और गम्भीर गति से प्रदर्शनी-भवन की ओर चले आ रहे थे। भिन्नुगण पीत कौषेय परिधान किए, आवद्ध कर उनके पीछे-पीछे थे। मुनि की प्रशान्त आकृति के आगे एक प्रकाश था, प्रखर ज्योति थी; जिसके सम्मुख सभी प्राणियों का तेज धूमिल पड़ गया था। उनकी उन्नत नासिका, तेजोमय नेत्र, गौर वर्ण और प्रभावोत्पादक अंगों में ब्रह्मचर्य की अपूर्व शक्ति प्रकट हो रही थी। उनके प्रदर्शनी में प्रवेश करने पर पुनः जय-घोष का विपुल नाद हुआ। चित्रकार विश्वरूप ने भ्रष्टा से उनके चरण छुए और आशीर्वाद लेकर एक ओर खड़े हो गए।

मुनि शान्तिपुत्र ने मन्द गति से आगे बढ़कर वह कला-कोष, सौन्दर्य की अपार निधि, कल्पनाओं का महान आयोजन उत्सुक दृष्टि से देखा, जिसमें सभी रसों की प्रचुरता थी। शृंगार की कमनीय कल्पनाओं का साहित्य से ग्रन्थि-बन्धन हो रहा था। साहित्य का माधुर्य मूर्त्तिमान होकर खड़ा था। उनकी दृष्टि अभी पूर्णतया चित्रों की एक पंक्ति पर भी नहीं गई थी कि वे विचलित-से हो उठे। उनका आगे बढ़ा हुआ चरण पीछे की ओर हटा। उन्होंने अपनी पलकों को बन्द करते हुए घृणा से एक हुंकार-ध्वनि विसर्जन की। भृकुटियों पर बल खाती हुई ललाट की रेखाएँ नीचे की ओर खिंच आईं। नासिका से श्वास फूला हुआ दिखाई दिया।

जनता के नेत्रों ने आश्चर्य-चकित होकर उनकी ओर देखा। भिन्नुगण विश्रुंखल-से हो चठे। उन्होंने आगे बढ़ कर करबद्ध कहा—प्रभो, आज्ञा ?”

क्रोध से आँखें लाल दिये हुए मुनि ने वज्रघोष में कहा—‘यह अनर्थ है । यह पापाचार है । यह दुर्भावनाओं की सृष्टि है । यह भिक्षुओ, लौट चलो यह यहाँ से ।’

उनका पीत कौपेय हवा में फहरा उठा । उन्होंने क्षण-मात्र में अपना प्रष्टभाग घुमाते हुए शीघ्रता से चरण उठाया । भिक्षुगण उनकी मूर्तिमान आज्ञा के समान लौट चले । जनना चिल्लाई । कोलाहल से भवन गूँज उठा । ‘बया हुआ महाभिक्षु, क्या हुआ देव, ‘क्या हुआ मुनिवर ?’ आदि प्रश्न-सूचक वाणियाँ चारों ओर से निकल पड़ीं प्रदर्शनी-मण्डप में, जो हर्ष के पारावार में डूब रहा था, एक तूफान-सा आ गया ।

मुनि की वाणी ने गरजते हुए आदेश दिया—‘बन्द करो यह प्रदर्शन । ध्वंस करो इन कुत्सित कला-कृतियों को, घोर पाप की इन जलती हुई ज्वालाओं को । ये आचरण-भ्रष्ट और कामुक प्रकृति वाले हृदय के उद्गार हैं । ये मानव की पतनोन्मुख भवनाओं के ज्वलन्त उदाहरण हैं । ये नरक के मार्ग में अप्रसर होने के संकेत हैं । ये विलासिता के उपकरण और चरित्र को नाश कर देने वाले उपायों की रचनायें हैं ।’ उन्होंने उपस्थित जन-समूह की ओर संकेत करते हुए कहा—‘प्रजाजनों, अभी लौट जाओ यहाँ से । इन आलेखनों के प्रभाव से हमारे आदर्शों के कलकित हो जाने का भय है । ऐसी प्रदर्शनियाँ पाटलीपुत्र में सदा के लिए वर्जित कर दी जायें, यह मेरी आज्ञा है, यह राजज्ञ है ।’

भिक्षुओं ने एक बार तुमुल जय-घोष किया—‘भगवान बुद्ध

की जय । महाभित्तु आचार्य शान्ति पुत्र की जय । भगवान तथा-
गत हमारे आचरणों की रक्षा करें ।’

जनता मौन थी । एक भी प्राणी के मुख से जय-घोष नहीं निकला । लोग किर्तव्यविमूढ़ से मुनि की ओर देखते रहे । एक क्षण के लिए बतावरण शान्त हो गया । सहसा नृपुंरों की क्षीण ध्वनि से जनता की दृष्टि तत्काल एक सुन्दरी युवती पर केन्द्रित हो गई । वह अपार जन-समूह को चीरती हुई आगे की ओर चली आ रही थी । उसके आभूषणों के रणत्कार ने वायु को भंकृत-सा कर दिया । उसके उन्नत वक्ष पर दोलायमान मुक्ताहार गति के वेग से उलझ-सा गया था । उसकी सर्पाकार वेणी लहरा कर स्कन्ध-भाग पर आ गिरी थी । उसके आरक्त अधरों पर मृदु कम्पन तथा भृकुटि युग पर क्रोध के चिन्ह अंकित थे । वह विद्युत्-रेखा-सी, भगवान आशुतोष के त्रिनेत्र से निकली हुई ज्वाला-सी मुनि के सम्मुख चली आई । वह भक्ता के भोक्तों से उठती हुई समुद्र की लहर के समान चंचल और अग्नि से उठती हुई ज्वाला के भ्रमान वप्र थी । उसने वीणा के तीव्र स्वरों की गूंजती हुई ध्वनि के समान गम्भीर वाणी में कहा—‘राजगुरु’ यह प्रदर्शन बन्द नहीं होगा । कला द्वारा आचरण-भ्रष्ट हो जाते हैं, यह कायरों की भावना है । कामुकता कला में या अन्यत्र कहीं नहीं मनुष्य के मस्तिष्क में है । ब्रह्मचर्य वह तुषार-कण नहीं, यौवनप्रभात की पहली किरण से गनकर वह जाय । प्रकृति का अंग-अंग सौन्दर्य की मनोहर छटा स अलङ्कृत है । मानव की दृष्टि ने

अनादिकाल से उसमें कला का दर्शन किया है और करती रहेगी वे चक्षु व्यर्थ हैं, जो भगवान के चमत्कारों को देखकर मुग्ध न हों। यह भिक्षुओं का विहार-स्थल नहीं, महाभट्टारक महाराज हर्षवर्धन का राज्य है। यह प्रदर्शन महाराज की आज्ञा से हुआ है। वे स्वयं इसका निरीक्षण करेंगे। आपको यह ज्ञात होगा कि पाटलिपुत्र का प्रत्येक प्रजाजन कला का उपासक है। उसने काल में कामुकता नह, भगवान के सुन्दर स्वरूप का दर्शन किया है। पाटलिपुत्र के राजकुलों ने अपने जीवन में कला को मुख्य स्थान दिया है।'

राजगुरु का मुख तप्त रश्मि की भांति लाल हो उठा। उनकी भृकुटि के दोनों छोर एक-दूसरे से आ मिले। नेत्रों से ज्वाला बरस गई। उन्होंने क्रोध से कहा—'प्रगल्भा नारी अपनी जिह्वा से निकले हुए इन वाक्य-शार्ङ्गों को रोक ले। तूने राजगुरु का अपमान किया है, भिक्षु-संघ का अपमान किया है। मेरी आज्ञा, मेरा आदेश हिमालय की तरह अटल है। प्रजाजनों, हटाओ इस पतिता को मेरे सम्मुख। कौन है यह दुष्टा नारी, जो मेरा इस प्रकार विरोध कर रही है। भिक्षुओ, इसको एक ओर हटा दो।

मुनि ने वेग से अपने चरण आगे की ओर उठाए। उनका गर्जन प्रजा के कोलाहल में डूब सा गया। सहस्रों स्वरों से एक साथ निकल पड़ा—'कला आनन्द का स्वरूप है, कला जीवन का पोषक अंग है। यह सनातन, पवित्र और सुखसिद्धि की सुधाधारा के समान निष्कलक है। कला का अपमान मानव-संस्कृति का

अपमान है ।’

वसन्त-श्री के मधुर हास की धवल किरणों के समान प्रभामय वह नारी अब भी कहे जा रही थी—‘भिन्नु, तुम्हारा ज्ञान हठ है । तुम्हारा नीरस जीवन मानव-जीवन का शाप है । तुम्हारी भावनाओं में भ्रान्ति का प्रलय है । तुम्हारे तापसी रूप में तामसी प्रवृत्तियाँ उबल रही हैं । क्या ब्रह्मचर्य इतना दुर्बल है कि वह वासनाओं पर विजय प्राप्त करने से अपना मुख छिपाना रहे ?’

गुरु से अब न रहा गया । वे भूखे नेहरी की भांति गरज उठे—‘भिन्नुओ, इस अभागिनी नारी को मेरे आगे से हटाओ । राजपुरुषों, इस लज्जाहीन कुलघातिनी को बन्दी बना लो ।’

चित्रकार विश्वरूप शान्त मुद्रा में एक ओर खड़े घटना वैचित्र्य को देख रहे थे । उस नारी के साहस ने, उसके दर्प ने, उसके स्वर्गीय सौन्दर्य ने चित्रकार को मुरझा कर दिया था । उन्होंने दौड़कर मुनि के चरण पकड़ लिए और दीन भाव से कहा—‘देव, अपराध मेरा है । मैंने ही कामुक कल्पनाओं का सृजन किया है, मैंने ही आपकी विशुद्ध भावनाओं पर कुठाराघात किया है । मैंने ही कला के कलत्ररूप पर विष सिंचन किया है । मैंने ही आदर्शों को अपवित्र करने का चक्रव्यूह रचा है, दण्ड मुझे मिले, बन्दी मुझे बनाया जाय । शाप आप मुझे दें, अपनी नेत्र ज्वाला से मुझे भस्म कर डालें । सच्चा अपराधी मैं हूँ । गुरुवर, अपनी क्रोधाग्नि से मुझे जला डालें । आपके सम्मुख अविनय करने वाली इस सुन्दरी को आप क्षमा का दें । यह आपकी शक्ति से अनभिज्ञ

है। इसने आपके प्रबल प्रभाव की अवहेलना केवल बाल-मुलभ स्वभाव के कारण की है, नारी जाति क्षम्य है, देव !'

सुन्दरी ने पुनः वरहास-मिश्रित भाव मुख पर अंकित करते हुए कहा—'गुरु, अपनी शक्ति का प्रयोग कीजिए, राजपुरुषों को आज्ञा दिजिए। ये देखते क्या हैं, मुझे बन्दी बना लें।'

गुरु की क्रोधाग्नि शीतल भी न हों पाई थी कि फिर प्रज्वलित हो उठी उन्होंने क्रोध के आवेश में अपना मुष्टिक ऊपर उठा लिया। उनका उत्तरीय स्कन्ध-भाग से गिरकर भुजमूल तक लटक गया। उनका विशाल वक्षस्थल निरबस्त्र हो गया। उसमें श्वास की गति नहीं समा रही थी। प्रजाजन चिल्ला उठे—'शान्त गुरुदेव, शान्त !' भिक्षुओं ने कहा—'देव, यह नारी है।' चित्रकार ने उनके चरणों में अपना सिर रख दिया था। किन्तु वह युवती अब भी तद्वत् नभीक खड़ी थी।

इसी क्षण अनेक भेरियों के नाद, शंखों की तुमुल ध्वनि और राजपुरुषों का आज्ञा-घोष सुनाई दिया। जनता की अवगुण शक्ति उसी ओर केन्द्रित हो उठी। सहस्रों नेत्रों ने मार्ग की ओर दृष्टिपात किया। ध्वजा, पताकाएँ, शूल और कृपाण धारण किए शूरों की पंक्तियाँ तथा अश्वारोहियों के समूह चले आ रहे थे। जय-घोष से दिशाएँ गूँज उठी। स्तुति-पाठों के वाक्य निनादित हो उठे। 'महाभट्टारक, आर्य-कुल-मण्डन, अधर्म-खण्डन, प्रजाजनानाम प्रिय महाराज हर्षवर्धन की जय ! राजराजेश्वर, सकल लोकपालक, नृपति-कुल-कलाधर श्री हर्षवर्धन की जय ! अखण्डैश्वर्य, अमोघ

पराक्रम, प्रबल प्रताप चिरायु भव !' के विपुल घोष से आकाश गूँज उठा। महाराजा हर्षवर्धन राजभगिनी राज्यश्री के साथ प्रदर्शनी-मण्डर में चले आ रहे थे। उनके पार्श्ववर्त्ती महाकवि बाण, कविवर मयूर और अनेक विद्वान् थे। सहस्रों जनों की पद-धूलि से दिशाएँ आच्छादित हो गई थीं। राजकुल के सामन्तों के मुकुट-मणियों की प्रभा विद्युत् के समान ज्योतिषित हुई जा रही थी। राजकुमारों के विशाल भुजदण्डों पर मणियों के जाल भूल रहे थे। वक्षस्थल पर लटकते हुए मुक्ता-कलाप जानुओं से टकरा-टकरा जाते थे। महाराज के दक्षिण कर में राजदण्ड शोभा दे रहा था। नील कंचुक से आवृत्त देह की गौर प्रभा स्वर्णाभरणों से भी आगे निकली जाती थी। मरकत-मणियों की मालाओं का हरित प्रभा-पुंज उनके वक्षस्थल पर चारों ओर बिखरा जा रहा था। चामर-धारियों के कटि भाग पर भूलती हुई चुद्र घण्टिकाएँ झनझना रही थीं। शूरों के स्कन्ध-देश पर शोभित आयुधों के टकरा जाने से अश्वों की पंक्तियाँ चौंक कर विह्वल हो उठती थीं। गजों के फूटकार से मार्ग की रज उड़-उड़ कर सैनिकों के मुखों को धूमिल किए देती थी। हेमखचित रथों में बैठी राजमहिलाएँ दासियों के समुदाय से आवृत्त उदसुक नेत्रों से प्रदर्शनी-भवन की पताकाओं को देख रही थीं, जिससे उनके कर्ण-भूषण प्रेवा के किंचित नत होने से कपोलों को छू लेते थे और उनकी श्वेत आभा आसक्त सौ झलमला उठती थी। कृपाणधारिणी स्त्रियों के मुख-कमल नम्र कृपाणों के फलों पर प्रतिबिम्बित होकर इस प्रकार शोभा दे रहे थे, मानो सरोवर के स्वच्छ वीचि-विलासों में अगणित अम्भोज

प्रफुटित हो उठे हों। उनके अंगरागों की सुगन्ध से वायु-मण्डल सुवासित था।

महाराज ने मन्द गति से प्रदर्शनी-भवन में प्रवेश किया। उन्होंने प्रथम दृष्टि में ही देख लिया, जनता किसी असन्तोष से व्याकुल-सी हो रही है। राजगुरु शान्तिपुत्र क्रोधित विपथर की भाँति फुफकार रहे हैं। उनके नेत्रों से ज्वाला बरस रही है। एक जन अपराधी की भाँति सम्मुख खड़ा है। एक नारी राजपुरुषों द्वारा वन्दिनी के समान घिरी हुई है। जनता ने महाराजा के 'चिरायु भव' का जयघोष किया। सभी के नेत्र उत्फुल्ल हो उठे। महाराज ने गम्भीर वाणी में कहा—'गुरुदेव यह क्रोध कैसा? यह युवती कौन है? जनता में कैसी उत्तेजना है? जान पड़ता है, कोई आश्चर्यजनक घटना घटी है।'

गुरु ने अपना उत्तरीय सम्हालते हुए कहा—'राजन्, इस प्रगल्भा नारी ने मेरा अपमान किया है, राजाज्ञा का अपमान किया है। इस दुष्टा ने...'।

राजभगिनी राज्यश्री ने गुरु के कथन को काटते हुए कहा—'गुरुवर, यह कैसा व्यवहार है, यह कैसी शिष्टता है? यह युवती सामन्त धनञ्जय शूलपाणि की पुत्री है। इसका अपमान राजकुल का अपमान है। स्वर्गीय सामन्त की सेवाओं का राजकुल आभारी है। ऐसे अशिष्ट वचन आपकी जिह्वा से शोभा नहीं देते। गुरु, इसने क्या अपराध किया है, कौन-सा अपमान किया है?'

चारों ओर शान्ति थी। सभी के नेत्र गुरु की ओर थे। राज-गुरु ने कहा—‘महाराज, मैंने केवल प्रदर्शनी में रखे हुए चित्रों की भावनाओं को कुत्सित बताया था। वे कामुक प्रवृत्तियों को उत्तेजना देने वाली कृतियाँ हैं। उनके द्वारा आदर्श का हनन सम्भव है। उनके द्वारा चरित्रों पर कलुषित आवरण के आ जाने की सम्भावना है। यही मेरा भाव था। प्रति वर्ष होने वाली ऐसी प्रदर्शनियों में ऐसा दोष रहना अनुचित है। इसके लिए प्रतिबन्ध की आवश्यकता है। इस युवती ने मेरे कथन का खण्डन करते हुए मेरे पद का अपमान किया है। इसके दुर्वचनों ने मेरी आत्मा को दुःखित किया है। यह दण्ड की अधिकारिणी है—चाहे धनञ्जय शूलपाणि की पुत्री ही क्यों न हो। इसने मुझे नहीं, राज्य के पद को असम्मान की दृष्टि से देखा है; जनता इसकी साक्षी है।

महाराज ने कहा—‘देवि’ इस विषय में तुम्हारा क्या प्रतिवाद है ? तुम्हारा नाम क्या है ? क्या तुम विवाहिता हो ?’

उस युवती ने नत-दृष्टि, आनत मस्तक, करबद्ध उत्तर दिया, ‘प्रभो, दासी का नाम चारुकीर्ति है। मैं आर्य धनञ्जय शूलपाणि की कुंवारी पुत्री हूँ। मेरा अपराध जो गुरु ने कहा, वही है। कला से प्रेम होने के कारण कला का अपमान मुझसे सह्य न हो सका, जो गुरु द्वारा किया गया था। गुरु की आज्ञा यह प्रदर्शनी सदा के लिए बन्द कर देने की थी। इन्हीं ने कला को केवल कामुकता के रद्गारों की सृष्टि बताया था। दासी ने इसका विरोध किया। गुरु क्रोधित हो गये और मुझे बन्दी बना लेने की आज्ञा दे दी। यही

घटना का सार है, महाराज ! ऐसी प्रदर्शनियों का आयोजन देश के शिल्प को उन्नत बनाने तथा लोक-रुचि को सुसंस्कृत करने के लिए होता है । यदि यह अनुचित है, तो महाराज की इच्छा !'

चित्रकार, जो मुनि के सम्मुख दीन भाव से खड़ा था, महाराज के सम्मुख आकर कहने लगा— देव, यह अपराध तो मेरा था । मैं इस दण्ड के योग्य हूँ । मैंने कला के नाम को बलवित किया है, कामुकता की रचनाओं को आश्रय दिया है । दोष मैं हूँ । गुरु अपना क्रोध मुझे दण्ड दिलवा कर शान्त करें । यह देवी तो सर्वथा निर्दोष हैं । इन्होंने तो केवल कला से प्रेम होने के कारण ही गुरु के सम्मुख प्रतिवाद के लिए जिह्वा खोली थी, जो सर्वथा क्षम्य है ।'

महाराज ने प्रदर्शनी-भवन के द्वार में प्रवेश करने के लिए अपने चरण आगे की ओर बढ़ाते हुए कहा—'तुम्हारा कौशल हम देखते हैं, शिल्पी ! गुरु के कथन में कितना सत्य है ।'

महाराज ने प्रत्येक चित्र को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा । कहीं कालिदास की कल्पनाओं की प्रतिलिपियाँ थी, कहीं भवभूति का करुण-रस था, कहीं बाण की वाक्पटुता का, सरस उपमाओं को रेखांकित किया गया था, कहीं मुनियों के आश्रमों में विचरती हुई मुनिकन्याएँ, मृगशवकों के युथ, कमल-सरोवरों में अवगाहन करती हुई देवबालाएँ कुशस्थलियों में मुनियों के जटाजूटों से खेलते हुए कपि और गो-चरण के लिए जाते हुए धूसरांग ऋषि-बालक, कहीं प्रेम का लीला-विलास, कहीं शृंगार । सभी रस

मानों एकत्रित हो गये थे। सभी रसों में स्फूर्ति थी, जीवन था। साहित्य में नो साकार होकर सम्मुख खड़ा था। कवियों की शब्द रचनाएँ चित्रमय हो रही थीं। मानव जीवन की कठोरता कोमलता में भ्रान्त होकर लावण्य के भार से आनत-सी विविध क्राँड़ाएँ कर रही थीं। बर्बर और हिंस्र भावनाएँ पशुओं में भी अंकित नहीं की गई थीं। मानो समस्त ससार प्रेममय होकर स्वर्गीय सुखों की मादकता में भ्रम रहा हो।

महाराज ने सभी चित्रों को देखा। कवि बाण ने प्रशंसा के लिए जिह्वा खोली। वे मन्त्रमुग्ध-से रह गए। पर महाराज मौन थे। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला। चित्रों को देख, प्रदर्शनी के प्रांगण में आकर वे खड़े हो गए। उन्होंने गम्भीर वचनों से सम्बोधन किया—‘चारुकीर्ति ! वह नतमस्तक सम्मुख खड़ी थी। उन्हें ने कहा—तुमने गुरु की भावनाओं पर कुठाराघात किया है। राजाज्ञा के समान गुरु के वचनों का अपमान किया है। उनके प्रति अपसम्म न दिखला कर धर्म के आसन को गिरा देने का प्रयत्न किया है। तुम दोषी हो। तुम्हें दण्ड मिलेगा।’ आज्ञा के स्वर से भवन ध्वनित हो उठा। गुरु ने गर्व-सहित मस्तक ऊँचा करके भिक्षुओं की ओर देखा। वे गर्बोन्मुख थे।

चित्रकार दौड़कर महाराज के चरणों से लिपट गया। ‘देव, अपराध मेरा और दण्ड दूसरे को मिले ! दोषी तो मैं हूँ, प्रजा-पालक ! गुरु का क्रोध मेरे ही कारण तो था। महाराज श्री हर्ष क। न्याय मुझे दोषी मानकर दण्ड की व्यवस्था करे। यह दण्ड

मुझे मिले।' कहते हुए चित्रकार की आँखों से दो अश्रुविन्दु छलक कर महाराज के चरणों पर आ गिरे। उसके सिरपर झूलती हुई केशों की लटें भूमि पर लोट रही थीं। प्रजाजन मौन कुतूहल से घटना को देख रहे थे।

महाराज ने क्षण-भर विचारमग्न रहकर प्रफुल्ल मुख से कहा—
'प्रजाजनों, हमने अपराध का दण्ड निश्चित कर लिया है अपराधी ने मर्यादा का उल्लङ्घन किया है। धर्म के उम सङ्केत पर आघात किया है जो मानव को महानता की ओर ले जाता है।

चारुकीर्ति तुम्हारा अपराध है। तुमने अनुशासन की अवहेलना की है। तुम्हें दण्ड मिलना चाहिये और चित्रकार तुम्हें भी। प्रजा की आँखों में कौतूहल और हृदय में आतुरता थी। कुसुमारीप कोमल इस किशोरी को दण्ड ? कितना कठोर होगा वह दण्ड ? कौन जाने ?

गुरु के मुख पर तेज था। भिक्षुओं की आँखों में हर्ष की दोलन थी। प्रजाजनों, महाराज ने पुनः कहा—

यही हमारे दण्ड की व्यवस्था है। धनञ्जय शूलपाणि की पुत्री चारुकीर्ति का पाणि-पल्लव हम चित्रकार विश्वरूप के हाथों में दे रहे हैं। हमारा आशिर्वाद है कि इनका प्रेम गृहस्थ के कठिन सूत्र में बंध कर जीवन को आनन्दमय बनायो चित्रकार विश्वरूप आज से राज्याभ्य में रहकर अपना कला-साधना करें। इनकी

गणना हमारे अमूल्य रत्नों में की जायगी । यही दण्ड हमारी ओर से इनके लिए निर्धारित किया जाता है ।’

हर्षोल्लास से वह मण्डप गूँज उठा । सहस्रों वाद्य एक स्वर से बज उठे । महाराज के न्याय की जय-जयकारों से जनता ने हर्ष-ध्वनि की । चित्रकार विश्वरूप के कों में चारुकीर्ति का पाणि-पल्लव था और उनके मस्तकों पर महाराज का आशीर्वाद । कवि बाण और देवो राज्यश्री ने दोनों को सन्तानवत् हृदय से लगा लिया । गुरु की आंखें जड़वत् देखती रह गई । वे बुझे दीपकों सी मन्द थीं ।

चित्रकार ने गुरु के चरण छूकर कहा—‘क्षमा करें, मुनिवर ! आपका दर्शी मैं हूँ । आपका आशीर्वाद हमारी रक्षा करे ।’

चारुकीर्ति भी गुरु के सम्मुख नतमस्तक थी । गुरु ने आकाश की ओर देखा । हाथ आशीर्वाद के लिए उठा और मुख से ये शब्द ध्वनित हो उठे—‘भगवान् तथागत की इच्छा !’



∴ ∴ ∴

हमारा मकतब

मौलवी अब्दुर्रहमन उन पुराने उस्तादों में थे जिनके पढ़ाये हुए लड़के जमादार से थानेदार और पटवारी से वकील तक बने हैं । उनके पढ़ाने की शैली का शहर भर के उस्ताद लोहा मानते थे ।

उनके शागिर्द सौ नहीं, दो सौ नहीं हजारों की संख्या में थे ।

मौलवी साहब मरिजद के प्रधान संरक्षक तथा खलीफा, हाजी, काजी, अनेक उपाधियों से युक्त थे । उनकी लम्बी डाढ़ी सुरमें से रंगी हुई, काली और चमकदार आंखें, पान की लाली से लाल हुए होठ, नीली धारी की लुंगी, लम्बा कुरता जिसके जोगिया रंग पर हरी मखमल की कामदार जाकेट बड़ी प्रभावोत्पादक प्रतीत होती थी । जाली की गोल ऊँची बाड़ की टोपी, पांच-सात ताबीज गले में पड़े हुए और दो-तीन तसबीह, कलाई पर लिपटी हुई उनके व्यक्तित्व को ऐसा जटिल बना देती थी कि स्वभावतः अलावद्दीन के चिंगरा की कहानी का मैजीशियन आंखों में समा जाता था । मालूम होता था जैसे वे एक फूंक मार कर चाँद-सितारे और सूरज तक को उड़ा सकते हैं, मिट्टी को सोना बना सकते हैं और खाक को पाक बनाकर उससे नई दुनियाँ की नींव डाल सकते हैं ।

शहर भर के भूत, चुड़ैल, भूतनियाँ और पिशाचनियाँ उनके नाम से कान पकड़ती थीं । उनकी सुरत से डरकर बेहोश हो जाती थीं । कितने ही भूत, हमजाद, परीजात, सफेद देव और काले देव उनके कथनानुसार उनका दामन पकड़े साथ-साथ घूमते थे । कच्चे कलवे तथा पकी डाइनों के वे गुरु-घंटा ल समझे जाते थे । जिन्द। पीर सैयद बादशाह की उपाधि जनता ने उन्हें दे डाली थी । वे चाहते तो दिल्ली के तख्त को उड़ा कर अपनी मसजिद में ला सकते थे । उनके दुश्मनों के सिर उतार लाना तो उनके बांये

हाथ का खेल था ।

शेख कल्लनशाह उनका विश्वासपात्र, शिष्य, मित्र, मन्त्री, सेवक, सहायक सब कुछ था । कल्लनशाह उमर में मौलवीसाहब से पांच-सात वर्ष बड़ा था किन्तु सम्मान की दृष्टि से मौलवीसाहब को दूसरा खुदा और मसीहा मानता था । शेख कल्लन मौलवीसाहब के गुणगान करते समय यहां तक कह जाता था कि मौलवी साहब ने कई बार खुदा से बातें की हैं । खुदा के यहां उनका बड़ा रुतबा है । कल्लन शाम को मसजिद में चिराग जलता वजू करने के बंधनों को गिनकर रखता, पानी की नालियों को साफ करता गमलों में पानी

देता और पानी के बड़े-बड़े मटके भर कर सुबह की बज्जू के लिये रखता था। प्रातःकाल झाड़ू लगाता, नमाजियों के जूते नम्बर से रखता, सीढ़ियों को कपड़े से झाड़ता, कुरान मजीद को ग्योतकर सहन में रख देता, जिससे मौलवीसाहब को किसी प्रकार का भी कष्ट अनुभव न हो। वह सचमुच मौलवीसाहब का बायां हाथ और दाहिनी आंख था।

इसी मसजिद में लड़के पढ़ते थे, जिनकी पढ़ाई का मूल्य तब प्रकट होता था जब वे हाकिम से लेकर साधारण कान्सटेबल तक की उपाधियों से भूषित होते थे। हाजियों की संख्या भी उनमें कम नहीं थी। जब वे एक घुटने पर वीरसन में और कभी पाल्थी मार कर बैठते थे तो जान पड़ता था कि वे सरस्वती के द्वार पर सच्चे सत्याप्रही के समान कटिवद्ध होकर डटे हुये हैं। एक ही स्वर, एक ही ताल में स्वरों की तीव्रतम ध्वनियों से जब वे पाठ याद करते तो मसजिद का विशाल प्राङ्गण कोलाहल से परिपूर्ण होकर चीख उठता था, जिसकी तुमुल ध्वनि श्रवण-पुटों को छेद डालने का प्रयास किया करती थी। सभी के मस्तक एक बार आगे की ओर पृथ्वी से लग जाते और ऊँचे उठ कर पीछे की ओर झूल जाते थे। उनकी समान गति यन्त्रवत् चलती रहती, न उसे बिभाम, न उसे क्षणभर का अवकाश।

आबेज्जर पानी सोने का, कफे दस्त हाथ की हथेली, खालिक बारी सर—जनहार। आंजमन बाशम किरोजे जंग...करीमा, मामुक्कीमा, आमद नामा, अयारदानिश, बहार दानिश, अनेकों

ग्रन्थों के पठ से छात्रों की जिह्वायें अविरल शब्द-धारा में प्रवाहित किया करती थी। किञ्चित् भी ध्वनि की शक्ति में व्यतिक्रम होने से एक गर्जना-सी हाती—आवाज नहीं आरही है।

पुनः अपनी पूर्ण शक्ति से वही तुमुल-घोष होता और मरिजद् का प्राङ्गण द्विगुण शक्ति से गूँज उठता। मस्तक पृथ्वी से लग-लग कर पीछे की ओर झूल उठते थे, जिनकी गति में वेग रहता था।

स्याही के धब्बों से कपड़ों पर काले दाग, कलम छीलने से अँगुलियां कटी हुई, नींद की खुमार से आँखें लाल, मौलवीसाहब के धुन्डे के चिन्ह इनकी पीठ पर, गालों पर तमाचे के निशान, घुंमों के प्रहारों से झुकी हुई कमर, बेंतों की मार से हथेलियां लाल, यहां के छात्रों की प्रत्यक्ष पहिचान थी। मौलवीसाहब की कठोर दण्ड-यातना से छात्रों के शरीर में कंपकंपी हो जाती थी, श्रवण बधिर और आंग्वें दृष्टि-हीन-सी प्रतीत होने लगती थी।

अँगुलियों में कलमें रख कर उन्हें जोर से दबाया जाता। धूप में खड़ा रख कर सुबह से शाम तक निर्जल-निराहार यातना दी जाती। लकड़ी की तख्तियों से शिर में प्रहार किये जाते, घुटनों पर, पीठ पर, हड्डियों के जोड़ों पर डंडों की मार पड़ती, कान खींचे जाते, यहां तक कि कई बार सिरों को दीवारों से टकरा-टकरा कर तोड़ने का प्रयत्न किया जाता, तब भी छात्रों की संख्या अति की सीमा तक थी। हिन्दुओं और मुसलमानों के लड़के एक ही रीति-नीति से विद्याध्ययन करते थे।

अवकाश के समय, जो बारह बजे के नियत समय पर होता था, विचित्र से विचित्र घटनायें घटतीं, आश्चर्य से भी आश्चर्य की दुनियां आबाद हो जाती, जिसमें रसों की सभी सृष्टियां हुआ करती थी। मौलवीसाहब मस्जिद के पीछे अपने मकान में चले जाते, कल्लन की आंखें नींद में घुल जाती। कल्लनशाह बैठ-बैठा ही लुढ़क कर फटे टाट पर सो जाता, तब..... तब एक सोई हुई दुनियां जाग पड़ती थी। दबी हुई शक्ति का अपने पूर्ण बल से संचालन होने लगता था, हँसी और रुदन एक साथ क्लिकारियाँ भरते, मार-पीट, दण्ड-प्रहार, छल-छिद्र सभी मनोवृत्तियां विकस-सी, पागल-सी, उन्मादिनी-सी चारों ओर प्रभावित हो उठती थीं। सईदा कुरता खोल कर जुवे निकालने लगता, महमूदा मन्त्रिस्वयों को पकड़-पकड़ कर उन्हें पंखहीन कर देता, कुदरत आख-मिचौनी के खेल में जहूर को पीट देता, अजीज पास के मकानों पर कंकड़ फेंकता, रामू लड़कों की दवात से स्याही चुरा लेता, मदन किताबों के कवर पर गन्दी गालियाँ लिखता, मसऊर अपने कोट और टोपी में से खटमल निकाल कर सुलेमान की सदरी में छोड़ देता, जग्गू सुक्क के कलमदान में रहमन की कलम छुपा देता और इस तरह अनेकों दुर्घटनायें घट जातीं, अनेकों मुकदमे बनते और अपनेआप फैसले पा जाते। मौलवीसाहब के आते ही सारी फसाद की दुनियां रफा-दफा हो जाती। कल्लन नींद से चौंक पड़ता और चौकन्ना होकर परिस्थिति का निरीक्षण करता। लड़के अपने-अपने स्थान पर आ जाते, वही तुमुल ध्वनि और अंग संचालन द्वारा पाठ याद की क्रिया आरम्भ हो जाती थी।

मौलवी साहब गर्जता करते--आवाज नहीं आ रही है !''

तब दीवारों का भी मौन टूट जाता था। पत्थरों की भी जिह्वाएँ हिलने लगती थीं। केवल रसूल अपने स्थान पर नहीं आता था। कारण कितने ही थे, पर प्रमुख तो यही था कि मसजिद के बगल के मकान में रहने वाले कठियारे की लड़की हबीबन से उसकी यारी होगई थी। अवकाश के समय रसूल छत की खिड़की से हबीबन की छत पर आंख लगाये खड़ा रहता और जब वह आती तो उस पर कंकड़ फेंकता, जीभ निकालता, अगूंठा दिखाता और वह भी इनकी प्रतिक्रिया में लकड़ी के छिलके, पानी के छींटे उछाल-उछाल कर रसूल के प्रश्नों का उत्तर देती रहती। रसूल मौलवी साहब की चौथी बीबी से पैदा हुआ इकलौता लड़का था और मौलवी साहब का प्रेम भी उस पर अटूट था, तब भी पढ़ने के समय वे पिता-पुत्र का नाता तोड़ दिया करते थे। वही दरुज जो सब के लिये था रसूल के लिये भी। फिर भी रसूल यह तो जानना ही था कि वे उसके पिता हैं, इसही लिये किञ्चित् उपेक्षा की भावना उसमें आगई थी। तभी तो उनके आने पर भी वह मसजिद की छत पर खड़ा प्रेम की बन्सी बजाता था। उस्ताद कभी गम्भीर घोष में पूछते, रसूल कहां है ?

कोई कहता यहां, कोई कहता वहां, कोई छत पर दौड़ता, कोई जने में, कोई बरामदे में, कोई आकर सूचना देता कि छत पर खड़ा है। मौलवी साहब उठते २ अपना ढण्डा सन्हालते और रसूल के सिर पर ही जा खड़े होते। रसूल कुछ कहता, खड़े रहने का

कारण बताता, अनुपस्थिति की विवशता प्रकट करता, तब तक उसकी पीठ, सिर व गालों पर, कितने ही घूँसे, कितने ही थप्पड़, कितने ही डण्डे एक साथ पड़ जाते, पर वह भी था बड़ा दिलावर। साधारण मार से विचलित न होता, कोई विशेष प्रकार की चोट ही आजाती तो अवश्य मौलवीसाहब को कुछ चुनी हुई गालियाँ दे डालता था, जिसमें उनकी म.-बहनें तक सम्मिलित रहती थीं।

मौलवीसाहब का क्रोध ऐसी विभीषिका, ऐसी प्रचण्ड ज्वाला थी जिससे किसी का त्राण नहीं हो सकता था। कितने ही लड़कों के दांत टूट गये थे, कितने ही कानों से बधिर हो चुके थे, कितनों की हड्डियाँ टूट चुकी थीं, किन्तु पिटते-पिटते इतने साहसी बन गये थे कि साधारण मार का कोई प्रभाव उन पर नहीं हुआ करता था, न उन्हें अपनी इस अवस्था का किसी प्रकार का दुःख ही था। कल्लन कहा करता था उस्ताद की मार से इलम हासिल होता है, जितने पिटोगे उतने ही काबिल बनोगे। वह अपनी एक आँख दिखा कर कहता, मेरे उस्ताद ने डण्डा मार दिया था, फूटते फूटते बची थी, तब भी इससे कम दिखलाई पड़ता है। उस्ताद ही के तुफैल से आज मैं मौलवीसाहब का बायाँ हाथ हूँ।

सदके की रेवडियाँ जब बँटती थी तो एक तूफान उठ खड़ा होता था। हफीज, रफीक, रहमत हशमत, रामू, शामू तीन-तीन बार अपना हिस्सा ले लिया करते थे। कोई टोपी में छुपा कर, अपने हिस्से की रेवड़ी कितनी ही बार माँग लेते और बाहर

के अवकाश के समय उनके स्वाद का आनन्द लेते । रसूल कितने ही लड़कों की रेवड़ी छीन कर ले भागता और कितने के हिस्सों में से लेकर हबीबन की छत पर फेंक देता था । जोर से हँसने का, जोर से खांसने का, जोर से छींकने का निषेध था । अदब-कायदों में पीठ देकर खड़ा होना और नंगे सिर पाठ याद करना भी अपराध समझा जाता था । खिल खिला कर हँसना तो बहुत बड़ी बे-अदबी और मूर्खता का प्रतीक माना जाता था, किन्तु यहां नियम केवल रस्ताद की उपस्थिति में ही लागू रहते थे, उनके चले जाने पर चीखना-चिल्लाना, शोर-गुल सब कुछ ज़म्य था ।

कभी कभी जब मौलवीसाहब किसी काम से बाजार चले जाते तो रसूल रुस्तम पहलवान और सफेद देव की कहानी सुनाया करता था । शीरीफरहाद की दास्तान उसे कण्ठस्थ थी । यूसुफ, जुलेखा और चहारदरवेश की कथा सुनने के लिये कल्लनशाह भी बड़े उत्सुक रहते थे, यद्यपि लड़कों में बैठना बे मर्यादा के विरुद्ध समझते थे । तब भी उनका विश्वास था कि इन कहानियों से आदमी को अकल आती है । यह सब मानते हुए भी रसूल पर उन्हें सन्देह था । स्वयं मौलवीसाहब कहा करते थे, लड़का आवारा होगया है । खुदा की कुदरत । हबीबन की प्रेम-कहानी भी कल्लन मियां ने उन्हें कह सुनायी । तब से मौलवी-साहब की रसूल पर कुदृष्टि थी और वह भी उन्हें निरादर की भाषा में मनहूस-चन्दूल तथा गधे की भूल तक उनकी अनुपस्थिति में कह दिया करता था ।

जुम्मन कठियारे से भी मौलवीसाहब कह चुके थे कि अपनी लड़की को छत पर न जाने दे नहीं तो उनका कोप उसे दीन-दुनियां से मिटा कर रख देगा। तब भी हबीबन छत पर आती रही। रसूल पढ़ाई के घंटों में गैरहाजिर रहता रहा और अन्त में एक जुमे की शाम को यह समाचार मस्जिद में आने वाले नमाजियों के कानों तक पहुंच गया कि रसूल हबीबन के साथ कहीं भाग गया है। उस दिन मकतब की छुट्टी रही। कल्लन मियां ने शहर छान डाला। वह हर गली के भटियारखानों में, सरायों में और आबारा लोगों की बैठकों में तलाश कर आया पर रसूल का पता नहीं था। मौलवीसाहब तिलस्म की डिबिया में देख चुके, रमल के पासों ने जवाब दे दिया, भूतों की पलटन खोज कर आ गई पर रसूल कहां चला गया था यह स्वयं मौलवीसाहब तक की समझ में नहीं आया था। कल्लनशाह का विश्वास था कि किसी जिन्द ने रसूल की अकल खराब की है, और वही दोनों को कहीं उड़ा ले गया है। लड़कों में इसकी चर्चा होती रही। मौलवी साहब राम की तस्वीर बन गये, उनकी आवाज में वह जोर कहां था, उनकी चपत और घूंसों में वह गहरी चोट बब थी। तब भी मकतब के किसी काम में कोई अव्यवस्था नहीं है। केवल कल्लन को दो-तीन जुमेरातों से कपड़े धोते नहीं देखा है। वह रसूल की तलाश में है, उसने इल्मगैथ की करामातें मौलवीसाहब से सीखी हैं, वह अपनी हार मानता तो किस प्रकार मानता। उसका विश्वास था चींटियों के बिल में से भी रसूल को खोज निकालूंगा। उस बदजात जिन्द को बोसल में

उतार लाऊँगा।

मौलवीसाहब रसूल की चिन्ता में, चाहे वह आवारा ही रहा हो, बीमार से दिखने लगे थे। उनकी आँखों में सुरमे की सलाइयाँ एक एक हफ्ते नहीं फिरती, डाढ़ी में लगा मेंहदी का रंग फीका पड़ जाने पर भी दोबारा नहीं लगाया जाता, वे चाहे निश्चिन्त भी रहें पर उनकी बीबी उन्हें चैन न लेने देती थी, रसूल की याद में वे घुल-घुल कर मोमबत्ती की तरह मिटी जा रही थीं, उनका भी दिल टूटा जा रहा था। लड़के का गम मौलवीसाहब कहते हैं बुरा होता है। जुम्नन ने अविश्वास से एक दिन कह दिया था, तुम्हारे हमजाद काले-बाल देव क्या हुए ? क्यों नहीं उठा लाते रसूल को हबीबन को। मौलवीसाहब इतना कह कर मौन हो जाते, अल्लाह को मन्जूर ही नहीं, जुम्नन तो जादू-मन्त्र क्या करे ? बसका हुकुम ? एक दिन किसी ने समाचार दिया कि मौलवीसाहब का इकलौता हबीबन को साथ लिये दिल्ली की सड़कों पर कव्वालियाँ गाता फिरता है। दो-चार आने जो भी खैरात के मिलते हैं उन्हें लेकर अपने दिन गुजारता फिरता है। रसूल को कव्वालियाँ गाने का पहिले ही शौक था और वह ढोलकी पर सबमुच राजलें गानेमें बड़ा उस्ताद बन गया था। मौलवी साहब की बेगम ने समाचार सुनते ही मौलवीसाहब को देहली जाने पर मजबूर किया। वे बुढ़े हैं इसका भी विचार उन्हें नहीं रहा, वे स्वयं भी जाने के लिए परेशान थे। कल्लन ने जाना चाहा पर मस्जिद का काम कौन सम्हालता, चिराग कौन जलाता, पानी बज्रू के लिये कौन मटकों में भरता, नमाजियों के जूते की सम्हाल

आखिर सब कुछ तो कल्लन करता है, वह न होगा इतना काम कौन देखेगा। कल्लन के बार-बार कहने पर भी मौलवी साहब अकेले ही सुबह देहली शहर को रवाना हो गये, रसूल की तलाश में, जो कठवालिगं गाकर अपना पेट भरता है। मौलवी अब्दु-रहीम का लड़का कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, देखेगा तो कैसी फजीहत होगी। फिकरों की एक गठरी लेकर मौलवी साहब देहली चले गये। उनके जाते समय कल्लन की आंखें भर आई थी। पर देश आखिर परदेश है, बुढ़ापे से कमजोर जिम्मा धुंधली रोशनी पड़ी हुई आंखें। तब भी रसूल को लाना है -- आवारा रसूल को।

एक हफ्ते बाद !

देहली से चिट्ठी मिली, रसूल का पता न लग सका। वह आगे बढ़ गया है; दूसरी चिट्ठी मिली, मैं देहली के शफाखाने में हूँ, मुझे ले जाओ। तार मिला मुझे ले जाओ। फौरन चले आओ, कल्लन मैं बीमार हूँ, सख्त बीमार। कल्लन भागा उस ही गाड़ी से, जिस दिन तार मिला था। वह देहली के भीड़ से भरे हुए बाजारों को पार करभा हौजकाजी के हकीम साहब के शफाखाने में पहुंचा। उनका सामान हकीम साहब ने कल्लन के हवाले करते हुवे कहा। "आल रात वे राहे अइम को चले गये" हर सांस पर वह रसूल को याद करते थे और पृछते थे रसूल आया ? कम्बख्त को मैं क्या कहता था एक बार अपनी सूरत दिखा देता" उन्होंने आखिरी बार इम तोड़ते हुवे कहा था रसूल मैं तुम्हें मुआफ कर दूंगा मुझसे आकर तो मिललो बेटा।

मौलवी साहब की वसियत थी, कल्लन मेरी जगह मस्जिद का इमाम होगा। कल्लन के आंसू रोके न रुके, वह जानता था उन्हें

रसूल के न मिलने का सदमा हुआ था। कम्बख्त ! एक बार मिल तो लेता, बूढ़ा बाप तेरे गम में चल बसा। कल्लन के बापस लौटने पर तीन रोज मकतब बन्द रहा। छुट्टी की खुशी में मौलवी साहब के मरने का यद्यपि किसी लड़के को दुःख नहीं था फिर भी जुमे की जैसी छुट्टी वे न मना सके, वह खुशी उन्हें न मिली जो मिला करती थी। कल्लन मकतब चलाता है, मरिजद का काम करता है, नमाजियों के लिये पानी भरता है पर उसके घुटने भी टूट चुके हैं, मौलवीसाहब की बेवा बेगम उनके किसी रिश्तेदार के घर चली गई।

अकेला कल्लन मरिजद में सोता है, लड़के कम होते जा रहे हैं, वह आकाश के परदे फाड़ देने वाली आवाज़ से मरिजद नहीं गूँज उठती। जुमेरात की रेवड़ियां कम हो गई, सईदा नहीं आता, रहमत चार रोज से गैरहाजिर, रामू पाठशाला जाने लगा है। कल्लन मारता भी नहीं, किसी को गालियां भी नहीं देता पर मकतब खाली होता जा रहा है। नमाजियों की भीड़ भी किसलिये कम है बज्जू के पानी के मटके खाली नहीं हो पाते, चरागदान मैले पड़े हैं, चिमनियोंमें बत्ती नहीं डाली गई, बज्जूके बंधनोंकी नालें टूटी पड़ी हैं। मार-पीट, ऊधम-तूफान कुछ भी तो नहीं, तख्तियां नहीं पोती जा रही हैं। आज का लिखा हुआ कल तक तख्तियों पर नज़र आता है। वह बुलन्द आबाज महल्ले भर में लोगों को बेदार नहीं कर देती, उसमें वह जोर नहीं, मकतब की दुनियां उजड़ी जा रही है, उसमें हमजाद और भूतों के पदरे नहीं हैं।

हमीदा अपनी खाला के यहां चला गया, महमूदा नौकरी करता है। लोग कहते हैं मौलवीसाहब के डन्डे में इलम था, उनके शागिर्दों का भी यही विश्वास है। टाट की पट्टियां नमाजियों के पांव पोंछने के लिये काम में आती हैं। कुरान मजीद सहन के बजाय बगामदे में हाफिजअलीमुल्लाह पढ़ा करते हैं। मस्जिद का काम गफूरमिरजा करता है। कल्लन की आंखें बेकार हो चुकी हैं। वह सोता भी मस्जिद की सीढ़ियों पर है। गफू कहता है, थूंक-थूंक कर दीवारें खगाव करदी हैं इसने। तब भी कल्लन कहां जाता। उसने सारी उमर मस्जिद में गुजारी थी। वह टटोल-टटोल कर मस्जिदमें जाता है। उन दीवारोंके स्पर्शमें उसे कुछ विचित्र-सा अनुभव होता है, कुछ अजीब-सी दुनियां उसकी अन्धी आंखों में आबाद हो जाती है। मौलवीसाहब की विचित्र कथायें उनके आश्चर्यजनक कृत्य वह बूढ़े नमाजियों को सुनाया करता है। रसूल की नालायकी पर उसे अब भी अफसोस है, कम्बख्त एक बार तो मिल लेता। मकतब उठ चुका, मौलवीसाहब न रहे पर मकतब की कीर्ति अब भी शहर में चारों ओर फैली है। अपने उस्ताद पर आज भी उन शागिर्दों को अभिमान है जिनकी आंखें डन्डों की मार से फूटते २ बची थी। रसूल शहर में दो बार आया भी या नहीं किसी को जानने की फुरसत नहीं है। उस मस्जिद की सीढ़ियों पर एक फकीर बैठा चिल्लाता है "वे खुदा की राह पर!"

जकी मियां कहते थे यही मौलवी अब्दुर्रहम का शागिर्द है। बेचारा नेत्रहीन हो गया है। गरीब का यही ठिकाना है।

खुदा का इन्साफ़

बहिश्त के कोने-कोने में खुशियां मनायी जा रही थीं। हूरो के मुख पर हर्ष की लाली फूट रही थी। गिलमाओं के कहकहे बहिश्त के तरानों में गूँज-गूँज उठते थे। प्रत्येक जन्नत के निवासी के हाथ में आवे-कौसर की प्याली थी। आँखों में मस्ती का नशा और जुबान पर मुहब्बत के गीत थे। फूल और बुलबुल की दास्तानें, जुदाई के अफसाने एकान्त में बैठ कर सुनाये जा रहे थे। ठंडी हवा में गुलाब की खुशबू महक रही थी। यहां चांदनी रात थी। आवे-हयात की बरसात थी। न जुदाई के सदमे थे और न गमों के मुकदमे। हर दिल खुशहाल। न कोई जरूरत का सवाल। यह फ़रिश्तों की दुनियां थी। प्रत्येक वास्तु कल्पना करते हो आ उपस्थित होती थी। बड़े-बड़े पीर-पगम्बरों की आत्माएं यहां निवास करती थीं। खुदा की इबादत के सुरीले गीत पेड़ों और पत्तों की जुबान पर भी सुनाई देते थे। वियोग का दुःख केवल शमा और परवानों की कहानियों में ही सुनने को मिलता था। सर्वत्र सुख-ही-सुख और आनन्द-ही-आनन्द था।

सहसा स्वर्गीय आत्माओं की एक बहुत बड़ी संख्या बहिश्त के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। दिव्य फ़रिश्ते उनके साथ थे। इन नवागन्तुकों ने आते ही 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के निर्घोष से जन्नत की दीवारें हिला दीं। घोर कोलाहल-सा चारों ओर फैल

गया। सभी स्वर्गवासियों ने इनका स्वागत किया। इनके सम्मान के लिए अनेक वस्तुएं भेंट की। किन्तु वे इन आगन्तुकों की इतनी बड़ी संख्या देख कर चिन्तित-से हो गए। आश्चर्य-सागर में डूब गए तथा भयभीत-से हो गए। वे सोचने लगे, एक-दूसरे से गुप्त परामर्श करने लगे—या अल्लाह, न तो इस जन्नत में इनके लिए इतनी हूरें हैं, न गिलमे हैं। आवे-कौसर की नहरों में इतना पानी नहीं कि पर्याप्त हो सके। फ़रिश्ते भी चिन्तित थे। इन्हें जन्नत में कहां स्थान दिया जाय, किंचित् भी स्थान खाली नहीं रह गया है। नित्य ही ये पाकिस्तानी आत्माएँ शहीद हो-होकर यहां चली आती हैं। न इन पर कोई प्रतिबन्ध और न कोई निषेध। पाकिस्तान की वायु के स्पर्श-मात्र से इन्हें स्वर्ग में आने की अनुमति कौन दे देता है? जन्नत के क़ानूनों में यह कैसा अन्धेर है? उन्होंने सोचा—‘अल्ल ह. क्या होगा? तेरी कुदरत, तेरी इनायत, तेरा राज़ तू ही जानता है!’

एक फ़रिश्ते ने कहा—‘बन्द-ए-खुदा, हो भी क्या सकता है? जब ये रूहें सचमुच जन्नत की हक़दार हैं, तो इन्हें यहां आने से रोक भी कौन सकता है? ये शहीद होकर आई हैं। इन्होंने दीन पर अपनी कुर्बानियां की हैं। दुनियाँ में इनका पाकिस्तान जन्नत का दूसरा नक्शा है। ये अल्लाह-परास्त हैं। इनका दर्जा बहुत बड़ा है।’

दूसरे फ़रिश्ते ने कहा—‘लेकिन जन्नत में इतना स्थान कहां है? आवे-कौसर की नहरों का पानी हमारे लिए ही पर्याप्त नहीं

है। उस पर ये आगन्तुक रुहें बड़ी बे-सत्र, बड़ी लालची और बे-अदब हैं। सारे जन्नत के निवासी इनसे परेशान हैं। ये जन्नत के क़ानून का निरादर करते समय ज़रा भी नहीं शरमातीं। तोबा ! तोबा ! हूरो की चीख-पुकरों से कानों के परदे फटे जाते हैं। कितने ही जन्नतियों का इन्होंने अस्मान किया है। फ़रिश्तों का असम्मान देखा नहीं जाता।'

पहले फ़रिश्ते ने कहा--'खामोश रहिए, खुदा की बातें खुदा ही जानता है। हमें जन्नत में रह कर ऐसी बातें मुंह पर भी नहीं लानी चाहिए। यह खुदा का घर है, बहिश्त है...'

सहसा एक पाकिस्तानी रुह दौड़ती हुई आई और उसने एक फ़रिश्ते के हाथ से शगव की सुराही और प्याली छीन ली। बेचारा फ़रिश्ता देखता रह गया। उसके मुंह से दबी ज़बान में निकल पड़ा--'अल्लाह, रहम कर ! रहम कर हम जन्नतियों पर।'

जन्नती रुहों और फ़रिश्तों का पुनः एक समूह दौड़ता हुआ आया। उनके मुख पर दुःख की छाया थी, भय के चिन्ह थे, हृदय में ठंडी आहें भरी थीं। वे कहे जा रहे थे--'अब हम जन्नत में न रह सकेंगे। प्यास से हलक़ सूखे जाते हैं। यहां की ठण्डी हवा गरम लू बन गई है। ये आने वाली रुहें यहां की हूरो के लिए लड़ती हैं। आबे-कौसर की एक बूंद पर कितना भगड़ा करती हैं। इनके आमाल क्या जन्नत के काबिल हैं ? किसने इन्हें जन्नत में भेज दिया ? अब जन्नत जन्नत न रहेगी।'

एक समूह ने कहा—‘चुप रहो। क्या तुम्हें खुदा पर भरोसा नहीं ? वह जो कुछ करता है, सोच कर ही करता है। उसका हुक्म, उसकी मर्जी ! वह सबका निगइवान है !’

इन शब्दों पर सब रूहों ने सिजदे किए और दुआएँ मांगी कि ‘ऐ अल्लाह, बरुश दे हमारे गुनाहों को ! रब, तेरा राज तू ही जानता है ! हम तो तेरे नाचीज़ बन्दे हैं। करम कर बारी-ताला ! हम जन्नतियों का इन्साफ़ कर। हम से कौनसा कसूर हुआ है कि यह मुसीबत आई है...।’

अभी बात पूरी भी न हुई थी कि एक कोलाहल सुनाई दिया—‘पाकिस्तान जिन्दाबाद’, ‘कायदे आजम, शाहन्शाहे पाकिस्तान, जन्नत-निशान जिन्दाबाद, नारा-ए-इन्कलाब, नारा-ए-तक-बीर—अल्लाहो अकबर !’

कुछ फ़रिश्ते दुनियां से पाकिस्तानी रूहों को लेकर आ रहे थे। इन रूहों की गर्जना सुन कर जन्नत में हाहाकार मच गया हूरें पुराने बहिश्तियों के गले से जा लिपटीं। गिलमाओं के गिरोह दरख्तों की आड़ में जा छिपे। भय के कारण चारों ओर आतंक छा गया। सब चुप थे। सबके हृदय धड़क रहे थे कि क्या होगा। पाकिस्तानी रूहें आईं और जन्नत में विचरने लगीं। उन्होंने दरख्तों पर सेवों का नाम-निशान न छोड़ा। आबे-कौसर की एक बूंद बाकी न रही। वे हूरों पर, जो भय से कांप रही थी, झपट पड़े।

एल फरिश्ते ने उच्च स्वर से घोषणा की—‘जो रूहें पाकिस्तान से आयँगी, उनके लिए जन्नत की कोई भी चीज ऐसी नहीं जो न दी जा सके। उन्हें पुरा हक हासिल है कि वे किसी भी जगह रह सकती हैं, इसलिए कि पाकिस्तान जन्नत का दूसरा हिस्सा है। वहां के प्रत्येक निवासी को जन्नत मिलती है, चाहे वह कैसा भी हो। उन्हें जन्नत में आने से कोई न रोके। जबानी मलक-उल-मौत हुक्म खुदा का...खबरदारशुद...बेदारशुद .।’

फरिश्ते की यह दुहाई सुन कर सारे जन्नत के लोग अवकू रह गए। उन्हें बेहोशी-सी आनं लगी। वे सोच रहे थे कि पुराने जन्नत कहां जायँगे, क्या करेंगे ? इस पर स्वर्ग की सभी आत्माओं की एक प्राइवेट मीटिंग हुई और उसमें परामर्श किया गया कि जन्नत को किस प्रकार इस विपत्ति से बचाया जाय, किस प्रकार ऐसी युक्ति निकाली जाय कि प्राचीन और नवीन आगन्तुकों में झगड़े न हों ? कुछ का विचार था कि चल कर अल्लाह से फरियाद करें। कुछ बोले—‘क्यों न पुराने जन्नत पाकिस्तान में जा कर बस जायँ। वह भी तो जन्नत का ही एक टुकड़ा बताया जाता है। फिर यहां और वहां में क्या भेद है ? यह रोजाना की शिकायत तो न रहेगी। व्यर्थ की इस मुसीबत से तो रक्षा होगी।’ काफी वाद-विवाद के बाद सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पाम्म हुआ कि हम जन्नत छोड़ कर पाकिस्तान में जा बसें और पाकिस्तानी रूहों के लिए यह स्थान खाली कर दें।

जन्नत के प्रधान संरक्षकों ने जन्नत वासियों को आश्वासन

दिया कि वे जन्नत छोड़ कर न जायँ, पाकिस्तानी आत्माओं से न डरें। उनके लिए अवश्य कोई प्रबन्ध ऐसा होगा कि उनके वर्त्तमान कष्ट दूर हो जायँगे। मगर जन्नत के निवासी इतने डर गए थे कि उन्होंने किसी शर्त पर जन्नत में रहना कल्याणकर नहीं समझा। उन्होंने सोचा पाकिस्तान में बड़ी शान्ति होगी, यहां से अधिक आराम होगा, नई-नई हूँ मिलेंगी, नए प्रकार के साधन होंगे; जन्नत की व्यवस्था अब कदापि ठीक न होगी, यह उनका विश्वास था।

एक जन्नती रूह ने पाकिस्तानी रूह से पूछा—‘क्यों मियां आपकी जन्नत में यानी पाकिस्तान में क्या यहां से भी खूबसूरत हूँ रहती हैं ? क्या यहां से बढ़िया शराब और आवे-कौसर हैं ? क्या यहां जैसे मजे हैं, खुशनुमा नज़ारे हैं ?’

पाकिस्तानी रूह ने कहा...‘क्यों नहीं। हमारे यहां की हूँ कालेजों में पढ़ती हैं, क्लबों और होटलों में रहती हैं। लेमन और आरेंजकश आवे-कौसर से ज्यादा मीठा है। ब्राण्डी के बराबर तुम्हारी शराब कुछ नहीं के बराबर है। वहां सिनेमा हैं, होटल हैं, कार्निबल हैं, डान्सिंग पार्टियां हैं। बड़े मजे हैं, बड़ी बहारें हैं। रहने के लिए होटल, बड़े-बड़े आलीशान बंगले हैं। बैठने की मोटर, साइकिल, हवाई-जहाज़ हैं। आपकी जन्नत में रखा ही क्या है ? बाबा आदम के जमाने की हूँ हैं। न नाचना, न गाना ! न सिनेमा, न होटल ! हमारी जन्नत में अजीब-अजीब बातें हैं। जी, हाँ !’

जन्नती ने कहा 'लेकिन मियां, जब आपके यहां ऐसी-ऐसी बहारे हैं ऐसे-ऐसे मजे हैं, तब क्यों आप लोग इतनी बड़ी तादाद में यहां चल आ रहे हैं ? क्यों यहां की पुरानी हूरो के लिए इतने लड़ते-भगड़ते हैं, बेताब रहते हैं ?'

पाकिस्तानी ने कहा आपका फ़रमाना बज्जा है; पर, साहब, वजह यह है कि हमारे यहां की हूरो बड़ी बेवफ़ा होती हैं, बड़ी सितमगर होती हैं, बड़ा भिन्न रहती हैं, सीधे मुँह बात तक नहीं करती। और सराब का भाव भी बहुत महँगा हो गया है। उस पर भी आजकल हमारे यहां कंट्रोल लगा हुआ है। हर चीज हिसाब से मिलती है। राशन भी मिलने में बड़ी मुश्किल होती है। फिर भी वहां के मजे किसी दूसरी जगह नहीं मिल सकते।'

जन्नती ने कहा—'यह राशन क्या चीज है ?'

पाकिस्तानी बोला—'अरे आप राशन भी नहीं जानते ! हमारे यहां सप्लाय के दफ़तर हैं, जहां से एक कार्ड मिलता है। वस जनाब, कार्ड दिग्याया नहीं कि हर चीज, जो चाहो, मिल जाती है—जितनी जरूरत हो।'

जन्नती आत्मा को यह बात सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह पाकिस्तान की जन्नत देखने के लिए बड़ी आतुर हो उठी। उसने यह सन्देश सारे जन्नत-निवासियों को कइ सुनाया। वहां की विचित्र बातों को सुन कर जन्नत की सभी रूहें पाकिस्तान

जाने के लिए व्याकुल हो उठीं। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे इस जन्नत को छोड़ कर पाकिस्तानी जन्नत में जा बसेंगी, जहाँ मजे-ही-मजे हैं, बहार-ही-बहार है।

निदान एक सुबह सारे जन्नती पकिस्तान की ओर चल दिए। उन्हें अपना पुराना स्थान छोड़ने में बड़ा दुःख हुआ; पर विवश थे, करते भी क्या। ग्वाली जन्नत को पाकिस्तानी रूहों ने अपने अधिकार में ले लिया। उन्होंने प्रत्येक वस्तु पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। किन्तु हूँ इतनी थोड़ी रह गईं कि बँटवारे का प्रश्न बड़ा जटिल हो उठा। प्रतिकूल बँटवारे के लिए कुछ-न-कुछ झगड़े हो जाते थे। एक के अधिकार में आई हुई हूर को दूसरे बलान छीन लेते थे। अनेक बार मार-पीट भी हो जाती थी और अपशब्दों के कोलाहल से जन्नत का वातावरण अशिष्टता की सीमा को लांघ जाता था। क्रिश्चिओं ने यह अशान्ति-पूर्ण अवस्था इससे पूर्व नहीं देखी थी। वे बड़ी कठिनाई में पड़ गए। विपत्तियों में उलझ गए।

— ४ —

जन्नत निवासी सब एकत्रित होकर पाकिस्तान की सरहद में पहुँच गए—कुछ सिन्ध और कुछ पंजाब में तथा कुछ बंगाल में। उनके आगमन पर पाकिस्तानियों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उनके निवास के लिए जहाँ-तहाँ स्थान दे दिए गए। पाकिस्तान सरकार को अवश्य चिन्ता हुई कि इस महँगाई में राशन की पहले

ही कमी है, अब इतने आदमियों का क्या प्रबन्ध होगा ? कुछ हिन्दुस्तान भेज दिए गए थे । तब भी जो बचे थे, वे कम नहीं थे । इस उलट-फेर में कुछ गुण्डों द्वारा पीटे गए, कुछ इधर-उधर भटके रह गए कि कहाँ जायँ । इन आने वालों को हिन्दू-मुस्लिम-भगड़ों में उड़ाई हुई स्त्रियाँ भी दी गई । कुछ एकाकी जीवन ही व्यतीत करने लगे । प्रत्येक व्यक्ति को काम भी विविध प्रकार के मिल गए । कुछ लोहे के कारखानों में, कुछ कपड़े की मिलों में, कुछ दफ्तरों में, कुछ सप्लाई के महकमों में, कुछ फौज में, कुछ भटियार खानों में और कुछ मजदूर पेशा लोगों में सम्मिलित हो गए ।

जिनको स्त्रियाँ मिली थीं, वे भी सुखी न थे । कारण, ये भगा कर लाई हुई स्त्रियाँ दिन-रात रोती रहती थीं । न उन्हें अपने नवीन पतियों से प्रेम था, न कोई सहानुभूति । कुछ अवसर देख कर भाग निकली । कुछ ने अपनी या अपने इन पतियों की हत्याएं कर डालीं । कुछ का वहां के गुण्डे ही इनके पास से छीन ले गए । सभी जन्नती दुखी थे, विवश थे, अपने किए पर पछताते थे । इस जन्नत का यह रूप है, उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी ।

वे सोचते—अल्लाह, यहां न जन्नत की सी हूरें हैं, न वह आराम के दिन और रातें ! जब कभी वे एक-दूसरे से मिलते, अपनी दर्दभरी कहानी सुनाते, रोते और अपनी तकदीर को कोसते, अपने अविचार पर सिर पीटते । कोई कहता, मैं लोहा

कूटता हूँ। कोई कहता, मैं कपड़ा बुनता हूँ। कोई कहता, मैं सोडा-वाटर की बोतलों में पानी भरता हूँ। कोई कहता, मैं ग्लास-फैक्टरी में भट्टी भोंकता हूँ। कोई कहता, मैं बीड़ियाँ बनाता हूँ। कोई कहता, मैं होटल में खाना पकाता हूँ। सभी को दुखड़े रोते-रोते रात बीत जाती थी। आबे-कौसर की याद आते ही वह बहाड़ मार कर रोते थे। हूरो के लिए बेताब आंखें फाड़ कर रह जाते थे।

एक जन्नती ने सुना था कि कालेज में हूरो का निवास है। वे उसी में बिहार किया करती हैं। अस्तु वह कालेज पहुँचा और एक साइकिल-बिहारिणी हूर से प्रेम-निवेदन किया। तोरे-नज़र और अबरूए-खंजर की उपमाएँ दीं, आहें, भर्रें, आंसू टपकाए; पर उस बेरहम हूर ने देखा तक नहीं। उसने इसे जो अपनी ओर आते देख, तो एक चप्पल तड़ाक से इसके सिर पर मार कर साइकिल से भाग गई। बेचारे आशिक का दिल रो पड़ा। अपने सोचा—उस पाकिस्तानी ने सच कहा था कि वहाँ की हूरें बड़ी बेवफ़ा होती हैं, बड़ी सितमगर होती हैं, बड़ी मगरूर होती हैं।

राशन-कार्ड की महिमा भी देखी, जो घंटों खड़े रहने पर, धक्के खाने पर भी समय पर नहीं मिल पाता। आर्रेंजकश आठ आने तक में भी प्राप्त नहीं ! शराब के दीदार के लिए पांच रुपये चाहिएँ ! जन्नती लोगों की बड़ी दुर्गति थी। उन्हें क्या मालूम था कि वह दूसरी जन्नत ऐसी विचित्र है ! वे चिन्तित थे, अब

क्या करें और कहाँ जायँ ।

सबने मिल कर अल्लाहताला से दुआ की कि या करीम, या रहीम, या खुदाताला, रहम कर ! हम पर करम कर मौला ! हम बे सोचे-समझे पाकिस्तान में चले आए हैं । जन्नत में सुख था, शान्ति थी, सन्तोष था । वे चांदनी रातें, वे आबेहयात की बरसातें, वे सुनहरे ख्वाब ! जन्नतियों के मुँह से ठंडी आहें निकल जाती थीं ! कफ़े अफ़सोस मलते थे । आँखों से आंसुओं के चश्मे बह निकलते थे ।

उधर जन्नत की आबोहवा तक बदल गई । न आबे-कौसर रहा, न शराव की नदियाँ । हूँ सूख कर कांटा हो गईं । फ़रिश्ते परेशान हो गए । दोऊग्व खाली पड़ा था । वहाँ कौन जाय ? पाकिस्तान का नाम ले शहीद और गाजी बन कर सब जन्नत में पहुंच गए । जन्नत में बड़ी भीड़ थी । पैर रखने को जगह नहीं । फ़रिश्तों का दम घुटने लगा । फूल मुरझा गए । वुलवुलें बेदम होकर टहनियों पर लटक गईं । शमा बुझ गई । परवाने बरबाद हो गए ।

‘पाकिस्तान जिन्दाबाद के नागों से बहिश्त की दरों-दीवारें हिल गईं । खुदा की हम्द के ताराने नारा-ए-इन्कलाब में बदल गए । कुछ पाकिस्तानी रूहों ने फ़रिश्तों का अपमान कर दिया, उन्हें पीट दिया । हूँ के सिर के बाल इस छीना-झपटी में उखड़ गए । दंगा उठ खड़ा हुआ । फ़रिश्ते भागे । हूँ चिल्लाई । सब

मिल कर खुश के हुजूर में चल दिए और पुकार मचाई—‘फ़रियाद है, फ़रियाद है, रब्बुल-आलमीन, अल्लाह पाक ! करम की दरखास्त है तेरे दरबार में ! इन्साफ़, इन्साफ़ ! हमारा इन्साफ़ कर मौला ! हम सताए गए हैं, बरबाद किये गये हैं ! जन्नत मिट गई ! तेरे नाम पर जुल्म और सितम होने लगे हैं ! बचा ले हमें, परवरदिगार !’

- ३ -

खुदा का दरबार लगा था। चार फ़रिश्ते तख्त को अपने सिरो पर उठाए हुए थे। सुरीले नगमों से खुदा की शान में हम्द गाई जा रही थी। बड़े-बड़े आला मर्तबे और पाक पैगम्बर की रूहें हाथ बांधे खड़ी थीं। खुदा-परास्तों की महफ़िल लगी थी। सब सर-नगूँ खुदा के सिजदेमें सिर झुकाए हुए थे। बर्फ-स सफ़ेद दाढ़ियाँ पैरों तक झूल रही थीं। अल्लाह के नूर के आगे किसी की आँखें ऊपर नहीं उठ रही थीं। सब खामोश, बा-अदब खड़े थे।

फ़रियाद की आवाज़ों ने महफ़िल को चौंका दिया। सब धर ही देखने लगे !

खुश ने फ़रमाया—‘यह क्या शोरगुल है ? किसकी दर्दभरी आवाज़ मेरे हुजूर में आ रही है ? क्या मेरी जन्नत में भी जुल्म होते हैं ? मेरे यहाँ भी बेइन्साफ़ी है ?’

इतने में हूरो और फ़रिश्तों ने खुदा के पाक तख्त को चूम लिया। उनकी आँखों में आंसू थे और ज़बान पर फ़रियाद की

पुकारें थीं ।

खुदा ने फ़रमाया—‘तुम पर क्या जुल्म हुए हैं ? किसने तुम्हें सताया है ? बयान करो ?

फ़रिश्तों ने रो-रो कर अपनी कहानी सुनाई । जन्नत की बरबादी और पाकिस्तान से आने वाली रूहों की वेशुमार तादाद का हवाला दिया । जन्नतियों की हिजरत फ़साद और भगड़ों की बुनियादें कह सुनाई ।

अल्लाह ने आँखें लाल करते हुए फ़रमाया—‘यह पाकिस्तान क्या है ? कहाँ है ? बयान करो ।’

सब खामोश थे । दरबारी बोले—‘हम नहीं जानते, अल्लाह-ताला, कि पाकिस्तान कहाँ है, किस तरफ़ है ।’

खुदा ने पुनः हुक्म दिया—‘कोई है, जो इस राज़ पर रोशनी डाले, पाकिस्तान का पता लगाए ? किसने वहाँ की रूहों को यहाँ भेजा और किस तरह यहाँ के रहने वाले वहाँ पहुँचे और किसने उन्हें फिर से इन्सानी जामा पहनाया ?’

एक दरबारी बोला—‘मेरे मौला, ख़ाजा अजमेरी से पूछा जाय । वे सारी दुनियाँ का हाल जानते हैं ।’

खुदा ने हुक्म दिया—‘बुलाओ । हमारे हुज़ूर में पेश करो मुइनुद्दीन अजमेरी को ।’

हुक्म के साथ सैकड़ों फ़रिश्ते दौड़े और ख़ाजा ग़रीबनबाज

को बुला लाए। एक क्षण में ख्वाजाजी खुदा के सम्मुख चले आए। ख्वाजाजी के सफेद कपड़ों से लोहबान और कपूर की महक उड़ रही थी। उनके आलीशान मर्तबे के गीत चारों ओर सुनाई पड़ रहे थे। दो-तीन अल्लाह की बन्दियाँ आगे-आगे कव्वाली गाती चली आ रही थीं। अल्लाह की बन्दियों की सुरमे भरी आंखों से भक्ति-रस के आंसू टपक रहे थे। 'ख्वाजा पिया मोरी रंग दो चुनरिया' की तानें ढोलक पर मस्ती का आलम पैदा कर रही थीं। उनके आते ही सबने अभिवादन किया। वे खुदा के तख्त के पास बाअदब, दस्तबस्ता जा खड़े हुए।

खुदा ने फ़रमाया—'ख्वाजा मुइनुद्दीन ! तुम जानते हो', पाकिस्तान कहाँ है ? वह कौन-सी दुनियाँ है ? ये पाकिस्तानी रूहें कौन हैं ?'

ख्वाजाजी ने एक क्षण चुप रह कर कहा—'पाकिस्तान ? पाकिस्तान है, मेरे मौला, दुनियाँ में। वह सरजमीने हिन्दुस्तान का एक हिस्सा, एक टुकड़ा है, जो अभी बना है। मिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना, कायदेआज़म, एक नया पैग़ाम ले पैग़म्बर बन कर दुनियाँ में गए हैं, और उन्होंने पाकिस्तान की बुनियाद डाली है। पाकिस्तानी रूहें पाकिस्तान के वाशिन्दे हैं, जो नज़त के हक्कदार होकर यहाँ आई हैं।'

'मेरा पैग़म्बर ! मैंने भेजा है ! ग़लत, नामुमकिन। मैंने कोई पैग़म्बर नहीं भेजा। मुहम्मद मेरा पैग़म्बर था। उसी को दुनियाँ

मैं मैंने भेजा था ! बुलाओ मुहम्मद को ।' खुदा के फरमान से बहिश्त की दीवारें गूँज उठीं ।

फरिश्ते मुहम्मद साहब को बुलाने दौड़ पड़े । मुहम्मद साहब की सवारी आई । उनके हर कदम पर फूल बरसते थे । एक पाक नूर का जल्वा चारों ओर फैल गया था । ज़र्रा-ज़र्रा कदमबोसी कर रहा था । खुशियों के बाजे बज रहे थे । उन्होंने खुदा के सामने सिजदा किया, और खुदा के हुक्म के इन्तजार में सिर झुका कर खड़े हो गए ।

खुदा ने फरमाया—तुम्हारे बाद कौन पैगम्बर दुनियां में गया है, मुहम्मद ?'

वे बोले—'कोई नहीं, वारीताला ! मुझे ही तूने दुनियां में भेजा था । मैं तेरा हुक्म बजा लाया । अब क्या फरमान है तेरा ? क्या इरशाद है तेरा ?'

खुदा ने कहा—'मुहम्मद, ख़ाजा का कहना है कि मिःटर मुहम्मद अली जिन्ना एक नया पैगम्बर दुनियां में इस वक्त मौजूद है । उसने पाकिस्तान बनाया है '

फरियादी फरिश्ते बीच ही में बोल उठे—'और पाकिस्तान के हर इन्सान की रूह जन्नत में चली आ रही है । जन्नत के रहने वाले हिजरत कर चुके हैं, पाकिस्तान में भाग गए हैं । जन्नत सिर्फ पाकिस्तानियों से आवाद है ।'

अल्लाह ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'यह सब क्या

सलट फेर है ? किसका हुक्म ? किमने आने दिया उन्हें जन्नत में ?'

सब खामोश थे, ज़बानबन्द थे । कोई न बोला ।

मुहम्मद साहब ने पूछा--'पाकिस्तान हिन्दुस्तान में कब से है, ख्वाजा ?'

ख्वाजा जी बोले--'ऐ रसूले मदनी, आज से दस बरस पहले हिन्दुस्तान में अमन था । मुसलमान और हिन्दू भाई-भाई की तरह रहते थे । मेरी नशस्तगाह अजमेर हिन्दुओं का खास शहर है; पर हिन्दू मुझे मुसलमानों से भी ज्यादा मानते थे । वे मेरी जियारत के लिए आते थे, मुझ पर एतकाद करते थे । लेकिन जब से मुस्लिम-लंग नाम का नया फिरका पैदा हुआ है, पैगम्बर जिन्ना ने अपनी शरा कयम की है और पाकिस्तान की बुनियाद कायम हुई है, हिन्दू और मुसलमान दोनों फिरके एक दूसरे की जान ले लेना चाहते हैं । भाई-भाई के गले पर छुरा चला देता है । औरतें और बच्चे क़त्ल कर दिये जाते हैं । ईमान के नाम पर कुश्ती खून होता है । मखलूक़ खुदा का जान-माल खतरे में है । पाकिस्तानी मुसलमानों का इरादा इस्लाम का तरक्की देना है । वे चाहते हैं, काफिर एक भी दुनियां में न रहे और सब हिन्दू मुसलमान बन जायें । उन्होंने इसके लिए हर एक तरीका जायज़ समझा है । यही पाकिस्तान के बन्दे जन्नत के तलबगार हैं । इन्होंने ही जन्नत को इस तरह बरबाद किया है, रहम की कमर तोड़ दी है ।'

खुदा ने कहा—‘मुहम्मद तुम्हें मेरी जात पर भरोसा है ? तुम मुझ पर ईमान लाते हो ?’

‘बेशक, मेरे मौला !

‘क्या तुम मेरी वाहिद हस्ती पर एतकाद करते हो ? क्या मेरे हर काम को मसलहत समझते हो !’

‘जरूर बारीताला !’

‘तुम मुझे खलिक मानते हो ? तुम मेरी ताकत को बरतरीन समझते हो ?’

‘क्यों नहीं अल्लाह पाक !’

‘तुम जानते हो, मैं जो कुछ करता हूँ, अपने बन्दों के हक में दुरुस्त करता हूँ । मैं खुदा हूँ । मैंने दुनियां बनाई है, ज़मीन से लेकर आस्मान तक ।’

‘तू सब का खुदा है, परवरदिगार !’—मुहम्मद साहब ने कहा ।

‘मैं चींटी का खुदा हूँ । मैं मक्खी और मच्छर तक का खुदा हूँ । मैं हर बशर का, हर शजर का, ज़र्रे-ज़र्रे का खुदा हूँ ।’

‘तू एकजात है, मौला ! हम तेरे बन्दे हैं । खिलकत तेरी बंदगी करती है ।’

‘तब, तब जवाब दो मुहम्मद, ख्वाजा मुइनुद्दीन, ईमान के नाम पर मेरी खिलकत पर यह जुल्म क्यों ? क्या हिन्दुओं को—

काफ़िरो को मैंने नहीं पैदा किया ? क्या वे मेरे बन्दे नहीं ? उनमें मेरा नूर नहीं ? उनमें मेरी जाते-पाक का जज्बा नहीं ?'

‘ज़रूर है, अल्लाह पाक ! रब्बुल-आलमीन !’—सबने एक स्वर से कहा ।

‘क्या मैंने उन्हें पैदा करके गलती की है ? उनकी दुनिया आबाद करके क्या मैं नाखुश हूँ ? अगर ऐसा होता, मुहम्मद, तो मैं उन्हें पैदा ही क्यों करता ? अगर इस्लाम ही मुझे प्यारा होता, तो काफ़िरो की दुनियां क्यों बसाता ? मैं तो सब कुछ कर सकता हूँ । क्या मेरा काम तुमने अपने हाथ में लेना चाहा है ? मेरी मर्जी के खिलाफ़ अगर ईमान के लिए कोई मेरे बन्दे को सताए, तो उसकी क्या सज़ा है ? मेरे नाम पर क़त्लो-खून करे, तो उसकी क्या सज़ा है ?’

सबने कहा—‘दोज़ख़, क़यामत तक दोज़ख़ ।’

‘क्या तुम्हारा नसीहत ऐसी ही थी, मुहम्मद ? इतनी कम-जोर ! ज़बाब दो, तुम्हारे ईमान की यह हालत ! रहम की इस तरह फ़जीहत की जाती है !’

मुहम्मद साहब ने कहा—‘मेरे मौला, मैंने तो यह नसीहत नहीं दी थी । मैंने तो यह किसी को नहीं सिखाया । मैंने तो कहा था : खुदा के हर बन्दे पर रहम करो, गुनाह भी बर्खा दो, जो तुम्हारे हक़ में बढ़ी करे, उस पर भी नेकी करो । पर यह चौद-हवीं सदी है । मेरी नसीहत भूल गए मेरे चाहने वाले । मैं क्या

करूँ, मौला ! उन्होंने इस्लाम को बदनाम कर दिया ।’

खुदा ने हुक्म दिया—‘जन्नत में आने वाली रूहों के आमाल नामे मेरे हुजूर में पेश करो । पाकिस्तानी रूहें जन्नत की हकदार हैं या नहीं, मैं गौर करूँगा, इन्साफ़ करूँगा । जन्नत में रहने वाले दुनिया में चले गए अपनी शकलें बदल कर, अपनी असलियत मिटा कर । वे परेशान हैं मैं जानता हूँ, वे मुश्किल में हैं । उनकी आहों से मेरे पाए तख़्त को धक्के लग रहे हैं । उन्हें वापस जन्नत में लाओ । जन्नत को जन्नतियों से आबाद करो । ख्वाजा मुईनुद्दीन, क्या तुम भी पाकिस्तान में रहोगे ? तुम्हें काफ़िरो से नफरत है ? तुम्हें भी ईमान का यह रवैया पसंद है ?’

‘नहीं, मेरे खुदा, मुझे तो आज तक हिन्दुस्तान ही अजीज रहा है और रहेगा । काफ़िरो को मुझसे कोई दुश्मनी नहीं । वे मुझे उतना ही चाहते हैं, जितना मुसलमान । व आज तक मेरी दरगाह में फूल चढ़ाते हैं ।’

खुदा ने फरमाया—‘पाकिस्तान के पैगम्बर को किसने यह दर्जा दिया, किसने पैगम्बर बनाया, हम इस पर भी गौर करेंगे । उसका आमालनामा हम खुद देखेंगे । पैगम्बर मेरा सिर्फ़ मुहम्मद है, और कोई नहीं हो सकता ।’

मुहम्मद साहब ने कुछ देर सोच कर कहा—‘इलाही, मालूम होता है कि यह सारी कार्रवाई शैतान की है । वही तेरी खिल्फ़त को बहकाता है । उसी ने यह उलट-फेर किया है । वही तेरे रास्ते

से सबको दूर ले जाता है। उसी ने जन्नत वालों को बहका कर पाकिस्तानी रूहों को जन्नत में भिजवाया, जन्नतियों को पाकिस्तान तक पहुंचाया और जिन्न के पैगम्बर होने की झूठी खबर फैलाई। और यह सब शैतान ने किया है।'

शैतान के नाम पर दरबारियों ने 'लाहील बला कूबत अस्तगु' 'फरुल्लाह इल्ला ब इल्लाह' का कलमा पढ़ा, और यह खबर जन्नत के हर निगाहबान फरिश्ते, मलक-उल-मीत वगैरह-वगैरह तक पहुँचाई गई कि वे शैतान के बहकावे में न आयें, हर बात को गौर से देखें और बिला हुक्म खुदा के किसी की बात न मानें।

खुदा को भी शैतान पर बहुत गुस्सा आया—'सचमुच यह नालायक है। मैं उसे भी सजा दूंगा। वह मेरी कुदरत को यों ग़लत रास्ता दिखलाता है। मैं उसे नाबूद कर दूंगा।'

खुदा के गुस्से से सारी जन्नत कांप उठी।

स्वाजाजी ने कहा—'मेरे अल्लाह, हज़रत मुहम्मद-जैसे पैगम्बर की नसीहत क्या बुरी हो सकती है? अब भी मुसलमानों में सच्चे ईमानदार मौजूद हैं। सच्चे हक़परस्तों की तादाद कम नहीं। कायदेआज़म भी जब इस्लाम की तरफ़ी चाहता है, तो बुरा न होगा। क्योंकि इस्लाम तेरे दरवार तक पहुंचने का रास्ता है। पर इसमें कोई शक नहीं कि शैतान ने सब पर जादू किया है। शैतान ने एक गिरोह बनाया है, एक जमात पैदा की है, जिसे गुण्डा कहते हैं। बस ये ही गुण्डे सब तबाही की जड़ हैं।'

और ये गुण्डे हिन्दू-मुसलमान दोनों के दुश्मन है। ये ही गुण्डे जन्नत में घुस आए हैं, जिनकी शिकायत तेरे सामने है। मलक-उल-मीत को भी धोखा दिया गया है। फरिश्तों पर फरेब डाला गया है।'

बादशाह अकबर की रूह, जो बहुत देर से खामोश खड़ी थी, बोली—'मेरे इलाही, मैंने बड़ी कोशिश की थी कि हिन्दू-मुसलमान एक हो जायें; पर मेरी औलादों ने उन्हें फिर अलग-अलग कर दिया। उनके रिश्ते ताँड़ डाले। मुसलमानों की यह नई जमात तो चाहती है कि सारी दुनियां मुसलमान होकर रहे और हिन्दुओं का नाम दुनिया से चला जाय। और हिन्दू चाहते हैं, मुसलमान कोई न रहे। तेरी खिल्फत इसी गलत इरादे में तबाह हो गई है। पड़ोसी ने पड़ोसी पर रहम नहीं किया। बच्चों की चीखोंसे भी किसी के दिल न दहले। अफ़सास !'

खुदा ने कहा—'अकबर, जो हुआ, वह हुआ। अब मेरा इन्साफ़ नई रोशनी पैदा करेगा, जिसमें न कोई हिन्दू होगा, न मुसलमान। इन्सान सिर्फ़ इन्सान होगा और मैं उसका खुदा हूँगा।' दखु ने हुक्म दिया—'भागे हुए जन्नतियों को वापस जन्नत में लाकर आबाद करो और इन जन्नत में जबर्दस्ती घुस आए खानाखराबों को मेरे हुजूर में हाज़िर करो।'

हुक्म के साथ वे रूहें खुदा के सामने लाई गईं। उन सब की कमर में एक-एक छुरा अभी अभी छुपा हुआ था।

खुदा ने एकसे पूछा—‘तूने क्या सवाब किया है, बन्दे, कि जन्नत का हक़दार बनता है, जवाब दे ।’

उन रूहों में से एक ने कहा—“अल्लाह, मैं सच्चा मुसलमान हूँ । मैंने एक सोती हुई काफ़िर की औरत को क़त्ल किया है ।’ दूसरे ने कहा—‘मैंने एक काफ़िर बच्चे को पाँच पकड़ कर चीर डाला है ।’ तीसरे ने कहा—‘मैंने काफ़िरोँ के मुहल्ले में आग लगाई है ।’ चौथे ने कहा—‘मैंने एक आदमी को जिन्दा जला दिया है ।’ पाँचवें ने कहा—‘मैंने एक औरत को सरे-आम बेइ-जजत किया है । हम सब ईमानदार हैं, खुदाातला !’”

खुदा ने कहा—‘बस-बस, खामोश ! तुम्हारे कारनामे सुन लिए मैंने ।’ हुक्म हुआ—‘इन सबको दोजख में डाल दो । गरम लोहे की शलखें इनके बदन पर चिपकाओ । ले जाओ इन्हें मेरे सामने से ।’

उन्होंने पाकिस्तान के नारे लगाए, पर उन्हें जबर्दस्ती घसीट कर दोजख में फेंक दिया गया । जन्नत के भागे हुए लोग वापस जन्नत में लाए गए । उनका चुरा हाल था । उनकी हड्डियाँ निकल आई थीं । ग़ून सूख गया था । वे लड़खड़ाते हुए खुदा के तख़्त से लिपट गए, मश्कूर हुए; सिजदे किए और जन्नत में आते ही तरो-ताजा हो बैठे ।

एक बार फिर से जन्नत की हवा बदल गई । मुरझाए हुए फूल खिल उठे । बुलबुलें गाने लगीं । सितारों की झालरों से

जन्नत की हर एक दीवार जगमगा उठी। चांदनी रातें आ गईं। हूरों के चेहरे जवानी की लाली से भर गए। गिलमाओं के क़ह-क़हे गूँज उठे। आवे-कौसर की नहरें जारी हो गईं। शराब से सुराहियों के मुँह तर हो गए। सब जन्नतियों ने मिल कर खुदा की तारीफ में हम्द गाना शुरू किया।

ख्वाजा अजमेरी जन्नत में दो रोज़ मेहमान रह कर वापस अजमेर चले गए। मुहम्मद साहब ने भी खुदा से इजाज़त ली और कावे की तरफ रवाना हो गए।

पाकिस्तान से खुदा ने जिन्ना साहब को बुलाया था, पर उन्होंने फरिश्तों से कहा कि मैं अभी पाकिस्तान के लिए कोयले का इन्तज़ाम कर रहा हूँ, फिर किसी दिन हाज़िर हो जाऊँगा। खुदा को उनकी गैरहाज़िरी और उदूल-हुकमी बहुत बुरी लगी। पर मजबूर, हुकम दिया—‘अब क़यामत के ही रोज़ मेरा इन्साफ़ सब के लिए होगा और मालूम करूँगा कि वे पैदाइशी मुसलमान हैं या बाद में उनकी मुन्नत हुई है।’

:: १० ::

दिल की मरजी

अंजुमन राय ! विशनदत्त ! अली अच्चास ! हुनहार ! समरथ राम ! मनसूर ! विचित्र वर्मा ! हाज़िर है ?

दारोगा सूरतखाना चित्रकारों की सुन्दर से सुन्दर कृतियाँ बादशाह जहांगीर को दिखा रहा था। पुरस्कार वितरण किया जा रहा था। प्रत्येक का नाम ले-लेकर उपस्थिति प्रस्तुत की जा रही थी “बिचत्तर” इस नाम पर “गैर हाजिर” दारोगा ने उच्च स्वर से घोषित किया। उसके नाम से एक आवाज और लगाई गई, पर चित्रकारों के समूह में निस्तब्धता थी, दारोगा ने चारों ओर दृष्टि फेंक कर बादशाह से निवेदन किया।

आलमपनाह ! बिचत्तर हाजिर नहीं है।

बादशाह ने गम्भीर होकर कहा, और मलिका की शबीह क्या अभी नातमाम है ? पेश की जाय ?

दारोगा ने झुक कर प्रार्थना की।

जिल्लेसुबहानी ! वोह एक माह से गैरहाजिर है। कारे खान्गी से गजबूरी जाहिर करता है। शबीह नातमाम है। उसकी गैरहाजिरी काबिले गौर सरकारे आली है।

अलीअब्बास ने कहा—शाहन्शाहे आलम वोह कई माह से खिदमते आलिया की लापरवाही करता जा रहा है। अब तक सब की जुबानें बन्द थी। हकीकत पर परदापोशी की थी। अब हुक्मे सुल्तानी हो, तामील की जाय।

जहांगीर ने एक क्षण मौन रह कर—मन्द स्वर में कहा, लेकिन वोह अपने फन का उस्ताद है। हम खुद इस पर गौर फरमायेंगे—उसे हिदायत कर दो।

बादशाह की सवारी लौट गई—होशियार बाश, खबरदार ! निगाहे दौलत की ध्वनियों से देहली के किन्ने की लाल दीवारों के कठोर हृदय थरा उठे । सहस्र-सहस्र मस्तक आदाब और कोर निशात के लिये झुक पड़े । दुन्दुभियों के गर्जन और शहनाइयों के नाद से गगन गूँज उठा ।

यह होली के जशन का दिन था, चारों ओर गुलाब के बादल छाये थे । होली के दरबार में जहांगीर अपने चारों ओर अर्ध चन्द्राकार चित्रकारों को बिठला कर अपने चित्र बनवाते थे । आज विचित्र की अनुपस्थिति से ग्विन्न होकर रह गये । चित्र बनाये गये । पर एक अभाव-सा उन्हें प्रतप्त हुआ । उस दिन की प्रत्येक शबीर में उन्हें अपना चेहरा उदास ही जान पड़ा—बादशाह ने हुक्म दिया, इन बेजान शबीरों को हमारे सामने न लाया जाय ।

चित्रकार विचित्र वर्मा जहांगीर के कृपा-पात्र जनों में से था, उसके चित्र राजकंय कलाकोप के अनुपम रत्न समझे जाते थे—विशेषतः व्यक्तिचित्र अर्थात् शबीर । उसकी आकृति-चित्रण की कुशलता कला-पारखियों की दृष्टि में विशेष महत्त्व रखती थी । वह प्रायः राज-परिवार के ही चित्र बनाता था—हरम में उसे प्रवेश की आज्ञा थी, कारण की बादशाह की प्रियतमा नूरजहां तथा अन्य बेगमों के चित्र उसी की तूलिका से अङ्कित हुआ करते थे । शिकार, दरबार, आम और खास उपस्थितियों में वही बादशाह की भिन्न-भिन्न पोशाकों और भङ्गिमाओं को अङ्कित किया करता था । उसे सम्मानित करने के लिए अनेक बार बादशाह ने खिलत

प्रदान किये थे, इनामें दी थीं, आदर दिया था ।

❀

❀

❀

जिस दिन बादशाह जहांगीर ने अपनी शबीहें दूर हटवा दी थीं, उस होली के लगभग एक मास पूर्व जब विचित्र वर्मा आलीजाह के हुजूर से बाहर निकल रहा था, उसके पीछे-पीछे आते हुए राजा बीरसिंह चंदेला पंचहजारी मंसबदार ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा--विचित्र !

उसने चौंक कर देखा, और आज्ञा का अनुगोध किया ।

कुछ सलोच से उन्होंने कहा--विचित्रजी ! कई दिनों से मेरी इच्छा थी कि चित्र बनवाने के लिये आपको बुलाऊँ, आप से अच्छा और कौन कलाकार इस दिल्ली में है, कल ही आ जाइये मेरी हवेली पर, पुरस्कार की चिन्ता न करिये, जो आप चाहेंगे वही मिलेगा ।

विचित्र ने सङ्कोच से विवशता प्रकट करते हुये कहा--राजा साहब ! इस आज्ञा को अस्वीकार करने का तो कोई कारण नहीं है, किन्तु आप स्वयं मेरी विवशता पर विचार करें । मुझे हुजूर सलामत की आज्ञाओं से अवकाश ही कहां मिलता है और यदि आज्ञा पालन समय पर न हो सका तो दारोगा साहब शिकायत कर बैठेंगे । यदि आप यह सेवा किसी और से ले लें तो बड़ी कृपा है । मैं आपकी आज्ञा न टालता पर विवशता से यह शब्द

कहने पड़ रहे हैं। मेरा तो इसमें लाभ ही था, अस्वीकार भी क्यों करता, उस पर आपकी आज्ञा ?

राजा साहब ने कहा विचित्रजी। यह कार्य आप ही को करना होगा, मेरा अन्य पर विश्वास नहीं। दारोगा साहब से मैं कह दूँगा; कल ही मैं प्रतीक्षा करूँगा आप की, प्रातःकाल अवश्य आइये।

चित्रकार ने मौन रह कर अपनी स्वीकृति प्रकट की। विचित्र जानते थे कि बादशाह की आज्ञायें अविलम्ब न पालन करने में कितनी कठोर होती हैं—कुछ भी देर लग जाने पर दण्ड कितना कठिन होगा, यह अनुमान से नहीं जाना जा सकता। वीरसिंह चंदेला का अनुरोध भी टाल देना विपत्ति को निमंत्रित करना है; वे पंचहजारी मंसबदारों में अपना विशेष स्थान रखते हैं, राज्य के बहुत बड़े अधिकारी हैं, अवज्ञा का परिणाम क्या होगा, यह विचित्र अच्छी प्रकार से जानता था। उसने जाना ही निश्चित किया।



वीरसिंह प्रतीक्षा में बैठे थे, उन्होंने विचित्र का प्रेम से स्वागत किया और कहा—राजकुमारी के विवाह-सम्बन्ध के लिये यत्रतत्र चित्र भेजने हैं। चित्र इतना सुन्दर हो विचित्रजी कि चित्र की शोभा मूल आकृति से भी आगे निकल जाये। कुमारी का रूप तदाकार चित्रित हो जाये। आपके ही चित्र की अनेक प्रतिलिपियाँ

हम बनवा कर भेजेंगे, इसलिये मूल चित्र अधिक से अधिक सुन्दर हो। और फिर दासियों को आज्ञा दें—इन्हें अन्तःपुर में ले जाओ, ये राजकुमारी विलासयुती का चित्र अङ्कित करेंगे। कुमारी को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर दो।

अन्तःपुर के एक सुसज्जित कक्ष में, जहां लक्ष्मी साकार होकर मणिमुक्ताओं के प्रकाश-पुञ्ज में क्रीड़ा कर रही थी, चित्रकार ने देखा अनेक दासियों से घिरी उसके सम्मुख रूप को वह अनुपम प्रतिमा उपस्थित थी जिसमें क्षीमार्य की चञ्चलता, यौवन की विकास श्री, लावण्य की भङ्गिमा एक ही स्थान पर, एक ही समय एकत्रित हो गई थी। माधुर्य की ऐसी छटा चित्रकार ने इसके पूर्व न देखी थी। यह सौन्दर्य, यह अभिनव रूप रस की उज्ज्वल धारा कुछ विचित्र ही थी, जिसमें मर्यादा की रेखायें, समा से बाहर निकली जाती थी, जिसके प्रत्येक प्रवाह में चंचल यौवन की सवेग गति थी, जो पद-पद पर ताल देकर थिरक उठती थी, किन्तु वह अनावृत नहीं, लज्जा के आवरण में पारदर्शक पदार्थ की भांति अपना अस्तित्व प्रकट कर रही थी। मौन का हृदय मानों मुखर होने के लिए छटपटा रहा था। चित्रकार की आंखें विजडित सी रह गई, कुमारी के मुखकमल की शोभा ने जैसे उसकी चेतना हर ली थी। क्षण के लिए उसके अङ्गों में जड़ता-सी आ गई ! उसकी इस दशा पर दासियों में उन्मुक्त हास की धारा-सी बह निकली। उसके कल-कल नाद से मानों चेतना रहित प्राचीरों भी हंसने की प्रतिक्रिया करने लगीं। कुमारी के मुख पर भी मन्द

हास्य की क्षीण रेखा प्रकट होकर लुप्त हो गई, दन्तावलियों का अर्ध भाग हीरक कणों के समान जगमगा उठा ।

चित्रकार ने सौन्दर्य का यह दूसरा पटपरिवर्तन देखा । दृष्टि ठगी-सी रह गई, उसके नेत्र मादक-से हो उठे, उसके हाथ की तूलिका गतिहीन हो गई, न वह आगे बढ़ना चाहती थी, न पीछे हटना । इस स्वर्गीय सौन्दर्य ने मानों उसे चकित-सा कर दिया, वह देखता ही रहा, देखता ही रहा, अवाक् निर्निमेष दृष्टि से ।

दासियों के समूह में पुनः हास्य प्रस्फुटित हो उठा । कुमारी ने वीणाविनिन्दित स्वर में, किन्तु आज्ञा की भाषा में कहा गर्व से उन्मुख होकर, आप देखते ही रहेंगे या अपना काम करेंगे; चित्रकार जी ! मुझे इतना समय नहीं है कि घड़ियों तक मृतिवत् बेठी रहूं ! आप चित्र बनाते हैं, बनाइये ? देखते क्या हैं ?

दासियों के सभी कण्ठ एकरुत्रित होकर कांस्य-पात्र की भांति झनझना उठे । चित्रकार ने अधीर होकर चारों ओर देखा, तूलिका अपने हाथ से फेंक दी, और अपमानित-सा, क्रोधित-सा, यह कहता हुआ उठ कर चल दिया—कुमाँजीजी मुझे भी समय नहीं है । चित्र बनाना मेरी इच्छा पर निर्भर है, आपकी आज्ञा पर नहीं, चित्र बनाऊँ या न बनाऊँ ।

विशाल भवन के द्वार से निकलते समय उन्मुक्त हास की क्लिष्टकारियाँ पुनः उसके कानों में गूँज उठीं । महल की एक-एक ईंट मानों हँसी के शब्दों से निनादित हो रही थी, उसने अप-

मानित की भांति झूट कर देखा तक नहीं, वह लज्जित सा, खिन्न सा एक भार हृदय में रख कर अपने घर चला आया।



एक मास से अधिक समय निकल गया, उसकी अनुपस्थिति दरबारियों की चर्चा का विषय बन गई। होली के दरवार के दिन स्वयं बादशाह सलामत ने उसे याद फ़रमाया; उसकी धृष्टता से खिन्न राजा वीरसिंह ने उसके खिलाफ़ तानेकसों भी की। किन्तु बादशाह ने अप्रसन्न होकर भी उसकी अनुपस्थिति पर विशेष विचार नहीं किया था, दारोगा को केवल आज्ञा दी गई थी कि इसका कारण स्पष्ट रूप से जान लिया जाये।

उधर विचित्र के हृदय में आंधी सी उठती और उसका मन सूखे पत्ते की तरह बिना किसी निर्देश की भावनाओं के आघात सह-सह कर उधर से उधर उड़ता फिरता था। घंटों मौन रह कर उसने सोचा—मैं क्यों इस प्रकार उठ कर चला आया, मेरा अपमान तो नहीं किया गया था ? बिना कुछ कहे, बिना राजा वीरसिंह की आज्ञा के मैं किसलिए चला आया ? वह पञ्चहजारी मन्सबदार हैं। मेरी अनुपस्थिति में बादशाह जहाँगीर का क्रोध, मृत्यु दण्ड भी असम्भव नहीं। किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात् ही उभके मन में सहसा एक विरोध उठ खड़ा होता। चित्रकार किसी की आज्ञा का सङ्केत नहीं बन सकता, क्या उन्होंने मेरा अनादर नहीं किया था ? मेरी कला का अपमान नहीं किया था ? वह

राजा वीरसिंह और बादशाह जहांगीर कोई भी हो, कलाकार अपना अपमान नहीं सहन कर सकता। वह पुरस्कार का लोभी नहीं, आदर का भूखा है।

किन्तु उस रूप की कितनी ही कड़ियाँ एकत्रित होकर एक श्रद्धालु का रूप ले लेती थीं। क्षीण हास की रेखाएँ जिसमें लज्जा का आवरण, यौवन का विकास, जो बसन्त के प्रथम किसलय सा अरुणाभ था, हीरक कणों सी चमकती दन्तावलियों की दीप्ति में डूबे हुये अधरों की रक्तिमा। उस अनुपम सौंदर्य का उज्ज्वल चित्र उसकी आंखों में अङ्कित होकर उसके अभिमान को पानी पानी करके बहा देता था। दूसरे ही क्षण वह सोचता, मेरा अशिष्ट व्यवहार—इस भांति चला आना क्या उस राजकुमारी का अपमान नहीं था ? कलाकार का हृदय इतना असहनशील, इतना चुद्र, इतना कठोर ?

पर उसका चित्र मेरे हृदय में अङ्कित क्यों हुआ चाहता है ? मैंने कहा था मुझे समय नहीं है, क्या यह सत्य है ? और यदि असत्य है तो मैं क्षमा.. विचार करते करते उसके अन्तर का कलाकार विद्रोही हो उठता। वह विचित्र छलना सी अनुभव करता हुआ मौन में खो जाता।

किसी ने आवाज लगाई। वह हरकारा था, जो दारोगा कुतुब-खाना की ओर से भेजा गया था, सरकारी परवाना दिखला कर बोला,—दारोगा साहब ने याद फरमाया है आपको। मलिक

नूरजहां की शबीह नातमाम है ।

चित्रकार ने परवाने पर हस्ताक्षर किये और हरकारे को लौटा दिया । उसने इस परिस्थिति पर विचार किया, जो जटिल होती चली जा रही थी । वह सोचने लगा—दो महीने निकल गये तो क्या हुआ, चित्र बनाना मेरी इच्छा पर निर्भर है, सरकारी हुक्म बाबशाह की आज्ञा, मुझे यह सेवा-वृत्ति भी स्वीकार नहीं है, मलिका का चित्र...। क्या वह उससे भी अधिक आवश्यक है ?—रूप की तरल उड़ती सी ज्योति उसके सम्मुख बिखर गई, उसके हृदय में स्वर्गीय आनन्द की एक लहर सो दौड़ गई, वह उसमें निमग्न सा हो गया, किन्तु मृत्यु की बिभीषिका का कराल-रूप भी उसने देखा—यह शाही फ़रमन । तुम स्वतंत्र नहीं चित्रकार ! आज्ञा के अनुचर हो—सेवक, तुम्हें अभिमान का अधिकार ही क्या है ?—वह पुनः गम्भीर हो उठता—राजा वीरसिंह की अवज्ञा, दरबार की अनुपस्थिति—मस्तिष्क पकड़ कर बैठ जाता । उलझे हुये केश उसके ललाट पर बिखर जाते, अभिमान रो उठता, हृदय तड़प कर रह जाता ।



राजकुमारी विलासवती को चित्रकार की यह अशिष्टता अनुचित, अकारण और अविचार से युक्त जान पड़ी । वह सोचने लगी—मैंने अपमान किया ? अभिमानी कहीं का ! 'मुझे भी समय नहीं है, चित्र बनाना मेरी इच्छा पर निर्भर है, पिताजी

की आज्ञा की भी अवज्ञा। माणक ! कुमारी ने भृकुटी को बक्रा-
कार कर पुकारा ।

दासी दौड़कर करबद्ध सम्मुख आ खड़ी हुई, आज्ञा की
प्रतीक्षा में ।

कुमारी ने कहा—माणक ! वह चित्रकार क्यों इस प्रकार
रूठ कर चला गया था ?

हंसी की रेखाओं को होठों पर से जबरदस्ती हटाने का प्रयास
करते हुये उसने उत्तर दिया—कुमारी जी ! आप ही ने तो उसे
अप्रसन्न किया था । समय नहीं है, कह कर उसका अपमान किया
था । वह विचारा तो सच कहती हूँ...मुझे क्षमा करें तो.....पर
नहीं आप व्यर्थ में मुझ पर क्रोध कर बैठोगी । मैं क्यों कहूँ, मैं
क्या जानूँ ?

बड़ी दुष्ट है री ! अभी कह रह थी क्षमा करें तो कहूँ, अभी
कह रही है मैं क्या जानूँ, कहती कहती रुक क्यों गई, बताती क्यों
नहीं ?

—दासी ने निकट जाकर कहा—बतादूँ ? फिर मुँह को राज-
कुमारी के कान के पास लगा कर कहा—इतना बड़ा चित्रकार
स्वयं चित्र बन गया था, राजकुमारी ! ऐसा है आपके रूप का
जादू !

चुप रह ! नीच कहीं की ! तुम्हें यही बातें आती हैं ।

दासी ने मुंह फुलाकर कहा—हाय राम ! मुझे क्या पड़ी है। वह जाने और आप जानें।

सुन तो ! यह बता तुझे कैसे जान पड़ी यह सब बातें ? वह एकटक क्यों देखता रह गया ? वह चित्र बनाने आया था, चित्र बनाकर चला जाता।

आयहाय, मैं क्या इनना भी नहीं जानती ? किसे पता था कि वह चित्र बनाने आया था और स्वयं चित्र बन जायगा ? राम रे राम ! विचारा बेसुध सा हो गया था। यदि आप उसका अपमान न करती.....

चुप रह, जवानदराज ! जब देखो तब हंसी...किन्तु उस वाक्य को वहीं छोड़कर राजकुमारी ने कहा—पर माणक ! वह विकल सा अवश्य था, क्या तू सच कहती है ?

मैं क्यों कहूँ ? आप नाराज होती हैं, कुमारी जी ! प्रत्येक स्थान पर अपने मन की इच्छा नहीं चलती, दूसरे का दिल भी देखा जाता है।

कुमारी ने अपने हृदय में एक पीड़ा का अनुभव किया, वह विचारों में डूब गई। चित्रकार के ये वाक्य उसके कानों में गूँज उठे—‘चित्र बनाना मेरी इच्छा पर निर्भर है, मुझे भी समय नहीं है।’—वह कितना निर्भीक था, आत्माभिमानि; और साहसी था; पिताजी की आज्ञा के सम्मुख तो पहाड़ों के भी सर झुक जाते हैं पर उसकी गति में दृढ़ता थी। पगड़ी के पेच के नीचे से निकले

कानों तक भूलते केश, मुख के गौर वर्ण को अधिक स्पष्ट करती हुई कपोलों पर बिखरी हुई रीतरेखा, कानों में बड़ी बड़ी मोतियों की मुरकियां—कितनी ही मधुर प्रतीत होने वाली भावनायें स्वप्न बन कर कुमारी की आंखों में छा गई। उसने अपनी चेतनाओं को एकत्रित करते हुये कहा—माणक ! यदि पिताजी उस पर क्रुद्ध हुये और कोई कठिन दण्ड निर्धारित कर बैठे तो क्या होगा ?

माणक ने कहा—आप चिन्ता न करें कुमारी जी ! वह भी बादशाह के कृपापात्रों में से है। उसने यह साहस किया तो किसी बल पर किया है। पर एक बात कहूं ? उसकी आंखों में कितना रस था—कह कर माणक ! मुस्कुरा दी।

कुमारी ने कुपित होकर कहा—चली जा मेरे सामने से निर्लेज्ज कही की ! फिर वही बात ? वही नीचता ?



अजमत ने कहा—दयाराम; उस्ताद कुछ दिनों से परेशान जैसे मालूम होते हैं, न तसवीर ही बनाते हैं, न दरबार में जाते हैं, न हमें ही कुछ इस्लाह देते हैं; मामला क्या है ? बता सकते हो ?

वह बोला—दोस्त ! उस्ताद की तुम पर ज्यादा मेहरबानी है तुम ही खुद उनसे पूछ लो। वह तुम्हें हम सब शिष्यों से ज्यादा मानते हैं। सबकी तस्वीरें अधूरी पड़ी हैं, क्या जाने उस्ताद किस चिन्ता में हैं, निरर्थक रेखायें खींचा करते हैं, कुछ दिनों से,

खामोश तनहाई में ।

अजमत ने कहा—मैं दरियाफ्त करूँगा ।

विचित्र अपने शयनकक्ष में बैठे एक चित्र पर रेखायें खींच उसकी ओर एकटक देख रहे थे, खोये हुये से, विचारों में मग्न, मर्माहत से, परेशान । अजमत ने प्रवेश कर कहा—आदाब बजा लाता हूँ खिदमत में, इजाजत हो तो मैं कुछ अर्ज करूँ ।

विचित्र ने समाधि से जागे हुये योगी की तरह कहा—क्या है अजमत ?

वह बोला—आप कुछ परेशान नजर आते हैं । कई हफ्तों से आप दरबार में भी हाजिर नहीं हो रहे हैं ? दरबारे शाही में हाजिर न होना, इस तरह तलबी के परवानों को नजर अन्दाज कर देना आपका यह परेशान चेहरा बेताब दिल की धड़कनों को जाहिर किये देता है, आंखों में एक मस्ती का आलम आबाद सा नजर आता है । आपने कभी कोई बात खादिम से नहीं छुपाई है, लेकिन यह ऐसा कौन सा राज है जो इस तरह आपके पहलू में खामोश बन कर बैठा है ?

विचित्र तदवत् विचार में मग्न सुनते रहे, उनके होठों पर जलते हुये निश्वासों की छाप थी और हृदय में आकुलता की छाया, उनके अस्त-व्यस्त केश कपाल पर बिखरे थे ।

अजमत ने पुनः पूछा—चुप क्यों हैं आप ? सभी शागिर्दों में

आपके लिए परेशानी है ।

कुछ क्षणों के पश्चात् विचित्र ने कहा—अजमत ! परेशानियां, हैरानियां मुसीबतें तो जिन्दगी के बेहतरीन लमहे होते हैं । इन्सान की हक़ीक़त का जब पर्दा फाश हो जाता है तभी वह अपनी असलियत को देख पाता है । ऐसी खिदमत कोई नहीं कि तुम्हें तकलीफ़ दूँ । जब खुशी ही बेज़ार होकर बैठी है तो खिदमत किसके लिये ?

मुक़र्रम उस्ताद ! ख़याल करें, शहन्शाह की बाइसे-नाराजी, आपके खिलाफ़ दुश्मनों को शिकायत का मौक़ा देगी । जो कदम जिधर उठायें सोच कर उठायें; मुख़ालिफ़ीन को यह मौक़ा न मिले कि वह खुशी के चिराग़ जलाये ।—अजमत उस्ताद को कुछ उत्तर न देते देख और अधिक छेड़ना उचित न समझ कर अपने स्थान पर चला आया । उसकी भ्रद्धा अपने गुरु पर भटूट थी । वह अपने गुरु की कला पर अभिमान करता था । और विचित्र भी अपने शिष्यों में अजमत को प्रथम स्थान देते थे; वह उनका शिष्य ही नहीं, विश्वासी मित्र भी था ।

एक दिन अजमत ने देखा उस्ताद दरबारी पोशाक पहिने कहीं जाने को प्रस्तुत हैं; कमर में अतलस का पटका, ढाके की मलमल का पारदर्शक मोतिया रंग का जामा, और पगड़ी पर ज़री की पतली किनार के पेंच लगे हैं, केशों के पट्टे गरदन के पीछे भूल रहे हैं । उसने पूछा—उस्ताद ! दरबार में तशरीफ़ ले जा रहे हैं ? मुबारक । बहुत मुबारक !

नहीं—कहते हुये वे वेग से निकल कर चले गये । अजमत आश्चर्य से देखता रहा । उसने सोचा—उस्ताद तो कहीं नहीं जाया करते, खुदा हाफिज !

राजा वीरसिंह शतरंज खेल रहे थे । प्रातःकाल की शहनाई भैरवी के खरों में हम खींच रही थी । द्वारपाल ने निवेदन किया—अन्नदाता ! विचित्र वर्मा, शाही मुसव्वर, आये हैं ।

हाज़िर होने दो—आज्ञा मिली ।

विचित्र ने अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये । राजा वीरसिंह ने पूछा—कहिये विचित्र जी ! कैसे कष्ट किया ?

राजा साहब ! आपकी आज्ञा का पालन करने आया हूँ । राजकुमारी का चित्र बनाना है; उस दिन मैं कुछ अस्वस्थ था । क्षमा करेंगे ।

राजा साहब ने प्रसन्न मुख से कहा—नहीं, क्षमा की क्या बात है, मैं तो उस दिन कुछ और ही समझ बैठा । आप अस्वस्थ हैं, मैं नहीं जानता था ।—फिर उन्होंने आज्ञा दी—विचित्र जी को जनाने महलों में पहुंचा दो, कुमारी से कह दो, ये तुम्हारा चित्र बनायेंगे ।

तत्काल आज्ञा का पालन हुआ ।

विचित्र तूलिका और चित्रपट लेकर कुमारी के सम्मुख बैठ गये ।

दासियों के समूह में अनेक चर्चायें कानों-कान चल पड़ीं। किसी ने कहा—अब आई अकल ठिकाने। किसी ने कहा—अपने राजा साहब की आज्ञा कौन टाल सकता है। किसी ने कहा—अपनी इच्छा से आये हैं। माणक की प्रसन्नता उसके मुख पर नाच रही थी; उसने कुमारी के कान में आकर कहा—अब अपमान न करियेगा कुमारी जी! मैं कहती थी न, कि बेचारा अपना हृदय खो बैठा है। इतना अपमान सहन करके भी बिना बुलाये आपकी सेवा में उपस्थित होकर अपनी लज्जा के आँसू पोछ रहा है। ये कलाकार सौन्दर्य के पुजारी होते हैं, राजकुमारी जी! और आपको यह निधि भगवान ने उदारता से दी है।

कुमारी मौन रही। चित्रकार ने पूर्ववत् कुमारी के रूप को जैसे अपने नेत्रों में भरा और हृदय पर अङ्कित किया। अपनी चेतना को, जो बिखरी हुई थी, कुमारी के लावण्यमय तथा सुकुमार अङ्गों के वर्ण-वैचित्र्य में एकत्रित करके तूलिका उठाई; एक रेखा भी न खींच पाया था कि कुमारी ने गम्भीर होकर कहा—ठहरिये! क्या आपकी इच्छा आज चित्र बनाने की है? समय का अभाव तो नहीं है?

चित्रकार ने स्मित भाव से कहा—समय का अभाव तो आप जैसे श्रीमानों को रहता है, और इच्छा? इच्छा थी तभी तो आया हूँ। इच्छा को होना ही पड़ेगा; उस पर अब मेरा शासन नहीं है, वह किसी के वश हो चुकी है।

किन्तु मेरी इच्छा आज नहीं है कि आप चित्र बनायें।
माणक ! कुमारी ने आवाज़ दी—एक सौ अशर्कियाँ आपको
यहाँ तक आने के कष्ट के लिये पारिश्रमिक दे दो ! अगले सप्ताह
आप पुनः आने की कृपा करें ।

चित्रकार ने कहा—मैं पारिश्रमिक लेने नहीं आया, कुमारीजी !
ऐसे पारिश्रमिक तो मुझे दिन में सौ बार मिला करते हैं ।

माणक ने एक सौ अशर्कियाँ विचित्र के सामने लाकर
रख दीं ।

चित्रकार ने कहा ले जाओ इन्हें वापस ! क्षमा करिये, मैं
पारिश्रमिक न लूँगा ; उठा ले जाइये इन्हें ।

कुमारी ने कहा—देने का संकल्प किया हुआ धन वापस नहीं
लिया जाता ।

कलाकार पारिश्रमिक के भूखे नहीं होते कुमारीजी ! यह मेरा
अपमान है ।

राजाओं के घर से गुणी खाली हाथ नहीं लौटा करते, यह
मेरा अपमान है ।

आप चित्रकार का हृदय नहीं परख सकीं, कुमारीजी !

आप राजगृह की मर्यादा नहीं परख सके, चित्रकार जी !

पर लेना तो मेरी इच्छा है ।

और बेना क्या मेरी इच्छा नहीं है ?

अब मैं कभी यहाँ न आऊँगा।—चित्रकार ने कहा।

अब मैं भी कभी चित्र न बनवाऊँगी—राजकुमारी ने भी वैसे ही मुस्करा कर कहा।

चित्रकार के मुख पर थी वही उलझन, जो उसे बिना बुलाये यहाँ तक ले आई थी। मन ने विरोध किया, वह कुमारी का चित्र देखकर ही शान्त होगा। नेत्रों ने कहा, वे कुमारी का रूप सम्मुख न होने से विकल हो उठेंगे। हृदय ने कहा, मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। चित्रकार चिन्ता में उलझ गया। पारिश्रमिक मेरा अपमान है और चित्र न बनाने से मेरे हृदय की शान्ति रूठी जा रही है। वह क्या करे ? अशर्कियाँ न लेकर वह कभी कुमारी को नहीं देख सकता और कुमारी को न देख कर वह किस प्रकार अपने हृदय को बश में रख सकेगा ? उसने सोचा—वह हृदय की शान्ति को नहीं खो सकता, विरोधी भावनाओं का दमन नहीं कर सकता। कुछ क्षण मौन रहने के बाद उसने कहा—लाओ दासी ! मैं लिये लेता हूँ।—और उन्हें हाथ में लेकर शिशु जैसे भोलेपन से पृच्छा—अब चित्र बनाऊँ ?

नहीं, अगले सप्ताह !—बरबस फूटी पड़ती हँसी को दबाते हुए राजकुमारी ने कहा।

अगले सप्ताह ! वह परेशान सा बोला — अर्थात् सात दिन बाद ?

माणिक ने कहा—जी, अर्थात् एक सौ अरसठ घण्टे बाद ।
हँसी की उज्ज्वल तथा चंचल धारयें दोनों ओर से फूट पड़ीं ।
विचित्र प्रसन्न-हृदय अपने निवास-स्थान पर लौट आया । इतना
भार लिये, जो हृदय से उठाये न उठता था ।



विचित्र के मुख पर हर्ष की रेखायें थीं और आँखों में प्रसन्नता
की चमक । उसने कुमारी के काल्पनिक चित्र बनाये—एक नहीं,
दो नहीं, तीन नहीं—अनेक । वह उसकी प्रत्येक भङ्गिमा को
अङ्कित कर लेना चाहता था । वह उसकी प्रत्येक लावण्यमयी
रेखाओं को अमरत्व देना चाहता था । उसने ऐसा आनन्द इससे
पहले कभी नहीं अनुभव किया था । बादशाह के हरम की अप्स-
राओं के रूप उसे मोहित न कर सके थे, अनेक रूपसिर्यों के
मुख-मण्डलों का दर्शन उसने किया था किन्तु यह विचित्र आक-
र्षण था, जिसने उसके रोम-रोम में एक मधुर सिहरन भर दी थी ।

घड़ियाँ गिनते-गिनते सप्ताह का वह दिन भी आ गया, जब
उसकी उपस्थिति की वह आनन्द-बेला सम्मुख आ खड़ी हुई; जिसे
वह अपने जीवन का शाश्वत क्षण बनाना चाहता था । वह
नूतन पोषाक में सुसज्जित होकर चल दिया । हर्षातिरेक से उसके
पाँव पृथ्वी से ऊपर उठे जा रहे थे ।

कुमारी ने भी प्रतीक्षा के पलों की गणना की थी । उसने
पिता को सूचना दे दी कि गत सप्ताह उसका स्वास्थ्य अच्छा

नहीं रहा। चित्रकार को आगामी सप्ताह के लिये निमन्त्रित किया है। दूसरे सप्ताह की घड़ियाँ गिनते-गिनते समाप्त हुईं। द्वारपाल ने चित्रकार के आगमन की सूचना दी, दासियाँ उसे अन्तःपुर ले आईं।

चित्रकार के मुख पर प्रसन्नता की हल्की मुस्कान थी और हृदय में धड़कन। उसने तूलिका उठाई और कुमारी पर दृष्टि को केन्द्रित किया। हास्य की मोहक छटा कुमारी के मुख पर थी। सङ्केत पाकर चित्रकार के सम्मुख माणक ने एक सौ अश-फियाँ पुनः लाकर रख दीं।

चित्रकार ने कहा—यह क्या हो रहा है, कुमारी जी ? मैं इस बार कदापि न लूँगा, आपकी आज्ञा का पालन एक बार कर चुका हूँ, आपने मुझे अशर्फियों का लोभी समझ लिया है ? मैं कदापि स्वीकार न करूँगा।

तब मैं भी अपना चित्र कदापि न बनवाऊँगी।—कुमारी के रुठे हुये मुख पर सौन्दर्य की अवर्णनीय छटा थी।

चित्रकार का हृदय मानो बलात् कोई छीने ले रहा था, वह विकल होकर बोला—मुझे स्वीकार है ; लाइये, अब तो प्रसन्न हैं आप ? आप ही की बात रहे।—और उसकी तूलिका चित्रपट पर चमत्कार दिखलाने लगी।

अभी रेखाङ्कन सम्पूर्ण भी न हुआ था कि कुमारी ने मन्द मुस्कान बिखेरते हुये कहा—शेष अगले सप्ताह बनाइयेगा।

चित्रकार ने भी इस सुयोग को अनुचित न समझा। मिलन का यही एक साधन क्या बुरा था ? अगले सप्ताह पुनः आने की प्रसन्नता में खोया हुआ, चलते-चलते उसने कहा—पर अगले सप्ताह मैं अशर्कियाँ न लूँगा, चाहे आप चित्र ही न बनवायें।

माणक ने नीचे का होठ दबाये हुये कहा—चित्र तो पहले ही दिन बन चुका था, श्रीमान ! अब तो पुरस्कार ही पुरस्कार लेना बाकी है, जो कुमारीजी की इच्छा पर निर्भर है।

हँसी की उन्मुक्त निर्मल-धाराओं ने भित्तियों को भी श्वेताभ सा बना दिया था।



विचित्र को शाहन्शाह जहाँगीर के आज पुनः याद करने पर द्रोगा ने निवेदन किया—जहाँपनाह ! तीसरा माह है कि तलबी का हर परवाना वापस चला आता है। वह बादशाही हुक्म को नज़र-अन्दाज किये हुये है, आलम पनाह !

बादशाह के तेवर बदल गये, हुक्म हुआ—हाज़िर करो उस मराहूर को, जिस हालत में हो, जिस लिबास में हो, जिस सूरत में हो, फौरन तामील हो। उसे हमारे सामने लाओ।

शाही-हुक्म हवा की तरह दौड़ गया। आज्ञा-पालन में देर ही क्या थी, चित्रकार हाज़िर किया गया ; बहुत से चित्र भी, जो वह अंकित कर रहा था, लाकर पेश किये गये। वे सब रेखायें

एक ही सुन्दर मुख की आवृतियाँ थीं, जिनमें माधुर्य की प्रभा फूट रही थी। चित्रकार बन्दी के रूप में बादशाह के सम्मुख खड़ा था।

—तुमने मलिका की शब्रीह अभी तक क्यों नहीं बनाई ? तुम हाज़िर क्यों नहीं हुये, हमारी तलबी पर ? जवाब दो मुसव्वर ! हमारी मेहरबानियों की यह तौहीन ? खामोश क्यों हो, बयान पेश करो ? बादशाह के वज्र-घोष से आतङ्क छा गया।

विचित्र ने नत-शिर होकर कहा—किबलये आलम ! मरजी हर दिल की हर दिल से जुदा होती है। किसी भी हुनरवर की मरजी खरीदी नहीं जा सकती। उसकी कीमत ? उसकी कीमत बहुत है, और कुछ नहीं। बन्दगाने आली ! दिल की मरजी सिर्फ दिल की मरजी है।

शाहन्शाह ने क्रद्ध होकर कहा—तुम्हारे दिल की मरजी ?—गुस्ताख ! जबानदराज ! ताउम्र कैद की सख्त सजा। ले जाओ इसे हमारे हुज़ूर से—कहते-कहते बादशाह हरमखाने में तशरीफ ले गये।

विचित्र बन्दी बनाकर जेलखाने में भेज दिया गया। उसके हृदय का वह काल्पनिक संसार (वे चित्र जो उसने वियोग की घड़ियों में सृजन किये थे) जला कर भस्म कर दिया गया। समस्त नगर में चित्रकार विचित्र के कठिन दण्ड का समाचार फैल गया। चित्रकार ने भाग्य के इस परिवर्तन को धैर्य से सहन

किया उसने न तो इस पर कोई दुःख ही प्रकट किया, न कोई प्रतिवाद ।

राजकुमारी का हृदय इस दुःखद समाचार से विदीर्ण सा हो उठा, वह अपनी सखी माणक से अनेक बार कहती—माणक ! उस पर यह विपत्ति मेरे कारण ही आई है । उसकी इच्छा, मेरी इच्छा और अब यह भगवान की इच्छा है जो वज्र बन कर टूट पड़ी है ।

माणक ही उसके हृदय की व्यथा जानती थी, कुमारी उसी के सम्मुख अपना हृदय खेलती, आँसुओं के कुछ विन्दु चित्रकार की स्मृति के चिन्ह बनकर कुमारी के कपोलों पर दुलक पड़ते थे । अन्तर की वेदनायें कराह उठती थीं, हृदय की इच्छायें ठन्डी आईं बन कर निकल जाती थीं ।



होली हर वर्ष की भाँति फिर आई । बड़े समारोह से, बड़ी शान से समस्त दिल्ली के दरों-दीवार लाल रंग से रंग गये । दरबारे-आम, दरबारे-खास खुशियों की रँगरेलियों से खिलखिला उठे । शाहन्शाह ने पिछले वर्ष की भाँति फिर एक अभाव का अनुभव किया ; उनके मस्तिष्क में चित्रकार विचित्र की स्मृति जाग उठी । उन्होंने मलिका से कहा—जाने जाँ ! तुम्हारी शबीह अब तक नातमाम है । विचित्र हमारे दरबार का बेहतरीन मुसव्वर था मलिका ! हमें उसका खयाल बेचैन बनाये डालता है—बह... बह.....उसके दिल की मरजी थी ।

मलिका ने कहा—आलीजाह ! ज़ने भी दीजिये ; बदज़बान कहीं का, मुँहज़ार !

नूर ! ख़ामोश रहो ! गलती हमने की है—बादशाह ने कहा—वह सारी तसवीरें उसके दिल के नाकामयाब अरमान थे । हम जानते हैं मलिका ! आशिक के दिल की हकीकत ; तीरे-नजर की खलिश कितनी बेचैन बना देती है इन्सान को ; उफ ! तुम्हारे खयाल में हमने भी अपना कलेजा नोच डाला है । बेताबी और जुदाई की परेशानियाँ हम जानते हैं । वह किसी का आशिक था, किसी की जुल्फे-पेचां में गिरफ्तार ना-उम्मीदी का शिकार था, ख़ामोश आहों का जलता हुआ मुजस्सिम था । हम उसे देखना चाहते हैं नूर ! हम उसकी हकीकत पर गौर फरमायेंगे । — और एक जगह रुक कर आवाज दी — कोई हाज़िर है ?

बादशाह के शब्द पर सहस्रों गुलाम हाज़िर थे । उन्होंने आज्ञा दी—हम कैदख़ाने का मुलाहिजा करेंगे । दारोगा-जेल को इत्तिला दी जाय, हमारी सवागी तैयार हो ।

कारावास के आलोकहीन प्राचीरों में बन्दी चित्रकार कोयले की अगणित रेखाओं से अपनी स्मृतियों का मूर्त रूप देने का प्रयत्न कर रहा था । वह अब भी कल्पनाओं के पारावार में डूबा कुछ रेखायें खींच रहा था । उलझे हुये बाल, अस्त-व्यस्त ; शरीर को अस्थियाँ शेष रह गई थीं ।

दिल की मरजी

होशियार ! खबरदार निगाहे इनायात—उच्च घोषणाओं से गगन गूँज उठा । शाहन्शाह ने देखा चित्रकार की दीवारों पर खींची रेखाओं में एक ही उद्देश्य, एक ही लक्ष्य, एक ही ताल और एक ही स्वर है ; वह स्वप्नों के संसार में विचर रहा है । आज्ञा हुई इसे हाजिर करो ।

बादशाह ने प्रश्न किया—यह क्या हो रहा है मुसम्बर ? यह कैसे खत दीवारों पर खींचे हैं ?

चित्रकार ने कहा, विनीत होकर—आलमपनाह ! यह मेरे दिल की मरजी है, जिसने तम्बीरों की शकल अख्तियार करली है ?

मलिका ने कहा—आलीजाह ! यह अभी तक अपनी मरजी के ख्याल में गलतान है, इतनी सजा पर भी ।

नूर हमने भी तो अपनी मरजी का ख्याल नहीं छोड़ा था, मैं भी तुम्हारे इन्तजार की घड़ियों में तसव्वु की दुनियां में खो गया था । आशिक का दिल खुदा के नूर से रोशन रहता है मलिका ! तुम नहीं जानती उन दिलों की हालत जो किसी के दीदार के लिये बेताब रहते हैं ।

इसे रिहा कर दो, होली के जशन की खुशी में—उन्होंने हुकुम दिया—मुसम्बर ! कल हमारे हुजूर में हाजिर होना ।

चित्रकार के मुक्त होने का समाचार दिल्ली में चारों ओर फैल गया ।

उसने कारावास से मुक्त होते ही सुना कि जैसे समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, उसकी भी उसने न की। कुमारी का विवाह हो चुका है। वह यहाँ नहीं है। दूर—बहुत दूर—उसकी कल्पना शक्ति की परिधि से बाहर।

चित्रकार के लिये मुक्ति महा बंधन हो गया। उसकी आह ने कहा कि इससे तो कारावास ही अच्छा था, जहाँ वह पुनर्मिलन की अभिलाषाओं पर जीवित तो था, पर अब कौन सा अवलम्ब रह गया है जिस पर वह अपने जीवन को पुनः मुस्कराता हुआ देख सके, वह अपनी आशाओं की लाश लादे चला ही गया—चला ही गया। कहाँ ? किस ओर ? क्या इच्छा लेकर ? कोई नहीं जानता।

कुमारी का चित्र भी असमाप्त—कलाकार की आशाएँ भी असमाप्त—और उसका जीवन भी असमाप्त—उसने इन सभी असमाप्त परिच्छेदों को संसार की आँखों से अन्तर्हित होकर समाप्त कर दिया था। उस दिन के बाद किसी ने विचित्र को दिल्ली में नहीं देखा, वह कहां चला गया, कोई नहीं जानता।

रानी

वह अल्हड़-सी, बालक के हठ-सी, बिजली की तड़प सी, हवा-सी, चंचल, मौन, पत्थरों को छेड़ती हुई, दीवारों से बातें करती हुई, किशोर आयु के प्रथम दिवस-सी, यौवन की उन्मत्त हंसी जैसी बेपरवाह लड़की थी। वह एक पैर को उछालती, सिर की ओढ़नी के अंचल को एक हाथ से घुमाती हुई आई और मेरे सिर के बालों को अपनी चंचल अंगुलियों से बिखेरती हुई निकल गई—कमान से निकले हुए तीर की तरह, आंधी के वेग की तरह। मैंने कहा—“सुनो तो, जमना ! अरी ओ जमना !” उसने घूम कर एक बार देखा। अंगूठा दिखा कर, जीभ निकाल कर, वह हंस पड़ी और भाग गई, हवा के भोंके-सी।

तालाब के किनारे उस गोदी के पेड़ में लाल लाल बहुत फल लगे थे। लड़ गया था वह बोझ से। हरे—हरे पत्तों में लाल माणिक के दाने जैसे गोदी के फल अंगूर के गुच्छों की तरह झूल रहे थे। वायु के भोंके उन्हें छेड़ जाते। वह कांप उठते। कुछ पृथ्वी पर झड़ जाते, कुछ डालियों से टकरा कर फूट जाते। रस की दो चार बूंदें टपक पड़ती थीं। मैंने ललचाई हुई दृष्टि से गोदी के फलों के गुच्छों को देखा। एक झुकी हुई डाली को पकड़ने का प्रयत्न किया। पर वह बार-बार हाथ से छूट जाती थी। अंगुलियों की पकड़ से निकल

जाती थी। मेरी दृष्टि ऊपर को उठती और पृथ्वी पर आ जाती। श्रम से पसीने चमक गये थे, मेरे ललाट पर। पैर का अंगूठा ऊंचा करके भी उस डाली को मैं न छू पाया। वह हवा से हिलती हुई एक बार झुक कर ऊपर चली जाती थी।

किसी ने मेरी आँखें पीछे से आकर बन्द कर दीं। मैंने कहा,—“खोलो . कौन है खोलो मेरी आँखें ! अरे खोलो !”

“बताओ जब जानें, कौन हूँ मैं ?” हसी की एक चंचल लहर हवा में थिरक उठी। कोमल अंगुलियों का स्पर्श मेरे गालों को छूना हुआ नीचे खिसक गया। उसके बालों की लटें सरसराती हुई मेरे गले से उलझ रही थी।

मैंने कहा—“कौन ? जमना ?” वह मेरे सम्मुख हसती हुई, आँखों में शरारत भरे हुए खड़ी थी, चकित-सी, विकसित-सी, उल्लास-सी की मूर्ति-सी।

“ओ हो, गोंदी तोड़ रहे थे !.....ऐसे तोड़ी जाती हैं ? सीख के आओ कहीं ! चलो मैं तोड़ती हूँ।” कह कर वह वृक्ष के तने पर पैरों और हाथों के बल गिलहरी की तरह चढ़ गई। एक डाली को हिलाया, झकझोर दिया पकड़ के। गोंदी के गुच्छों का ढेर लग गया। अपनी सफलता पर उसने हँसी का एक ठहाका लगाया। और दूसरे ही क्षण नीचे उतर आई।

मैंने कहा—“तुम भी ले लो थोड़े से गुच्छे इसमें से, जमना। घर ले जाओ।

मुँह बना कर वह बोली—“इसके लिये तुमसे पूछना है ? ले जायं या न ले जायं !”

मैंने कहा—“तोड़ तो तुमने ही थे, पर दिखलाये मैंने थे । तुम क्या जानती थीं कि यहाँ इतने फल एक साथ हैं ?”

“अच्छा ! ...अरे वाहरे, मैंने दिखलाये थे...! जैसे औरी की आंखें ही फूट गई हैं ! किसी को भी दिख जाते थे । दिखलाने में भी कोई बहादुरी है !”

“और क्या तोड़ने में है ? बन्दरों की तरह पेड़ पर चढ़ने में ?” हँसी निकल पड़ी थी मेरे मुँह से । उसकी तेवरियां चढ़ गईं । बोली—“बन्दर तुम ! तुम्हारा सारा घर बन्दर !” कहती हुई पलट कर चल दी वह ।

“जमना ! रुठ गईं क्या ? अरे, सुनो तो, नाराज हो गई हो ?” वह रुकी, मैं निकट चला गया । “अच्छा मैं ही बन्दर सही । तुम कौन हो तब ?” उसके छितराये हुए बालों को, ललाट पर से हटाते हुए मैंने कहा ।

“हम हैं रानी !” उसने मुँह फुला कर अभिमान से तन कर कहा ।

दिन चढ़ता जा रहा था । तालाब के शान्त, शीतल जल पर सूर्य की किरणें लौट-लौट जाती थी । दूर जंगल के वृक्षों के झुंड खड़े थे । उनके सिरों पर पांख रखता हुआ वायु मरसराता

पृथ्वी से आ लगी। मैंने कहा—“रानी !” वह मौन थी। “जमना !” वह मौन रही। “एक बात सुनो”, उसके बढ़ते हुए पग को देख कर मैंने कहा। वह लाज के आवरण में लिपट-सी गई, अज्ञात किसी आशंका से दब-सी गई। उसके अघर फरक कर रह गये। उसने घूँघट को और आगे सरकाने का प्रयत्न किया। मैंने फिर कहा—“चुप क्यों हो, जमना ? क्या हुआ है तुम्हें ?...बोलती क्यों नहीं ?”

उसने दृष्टि एक बार आगे और फिर एक बार पीछे फेंकी, और फिर नन कर ली। मेरी ओर बिना देखे ही आगे बढ़ते हुए कहा—“चुप !...कोई सुनेगा कोई देखेगा...जाने दो मुझे !” वह चली गई, वेग से पगडंडी के साथ-साथ घूमती हुई-सी। उसके नूपुरों की ध्वनि कुछ यहां बिखर पड़ी थी, कुछ आगे बिखरती जा रही थी। उसने घूम कर भी न देखा। “कोई देख लेगा !”... वायु में ये शब्द प्रतिध्वनित होकर दिशाओं में फैल गये। रात छा गई; प्रकाश खो गया।



उस तालाब के किनारे गांव के ठाकुर की कोठी बन रही थी। सैकड़ों मजदूर काम पर लगे हुए थे। कोई नींव खोद रहे थे, कोई चूना पीस रहे थे। मिट्टी उठा कर मैदान साफ किया जा रहा था। कुछ मुंशी हाजिरी के रजिस्टर लिये मजदूरों की तन-खवाह के पैसे गिन रहे थे। कढ़ी दुपहरी थी। सभी के अंगों

से पसीना टपक रहा था। खुली धूप में मजदूरों का वह दल जी तोड़ परिभ्रम कर रहा था। न कोई किसी से बात करता था, न कोई किसी की ओर देखता था। सभी अपने अपने कामों में व्यस्त थे। मुझे इस कोठी पर काम के लिये नौकरी मिल गई थी। मुंशी था मैं। पत्थर-चूने का हिसाब करता था। कितने मजदूर चूना लाये, उनकी मजदूरी जोड़ना; कितना पत्थर आया, कहां से आया, कितने आदमी लाये, इसका जमा-खर्च रखना मेरा काम था। प्रातःकाल आठ बजे आता और पांच बजे घर लौटता था। दिन भर का परिभ्रम, थोड़ा वेतन, चीजों की महुँगाई और गृहस्थी का पोषण करना! कितनी ही समस्याएँ एक साथ मस्तिष्क में चक्कर लगाया करती थीं।

हाजिरी हो रही थी। दस बज कर कुछ मिनट हो गये थे। बड़े मुंशी बिहारीलाल तीव्र स्वर से चश्मा आंखों पर चढ़ाये, बिना बालों की चिकनी और पीछे की ओर झुकी हुई खोपड़ी को नंगा किये बारी-बारी से आवाज लगा रहे थे—“शामा...रामा... कन्हैया.....मननी.....सीता.....गंगा.....रामी...हाजिर!” “जी सरकार, हाजिर! मन्ना . गैर-हाजिर...” जमादार ने सबको अपना-अपना काम बता दिया, मजदूर काम में लग गये। मैं अपना हिसाब जोड़ रहा था। सब मजदूर और मजदूरनिबों को पैसे देने थे—कल की मजदूरी के छः आने प्रति व्यक्ति।

एक मजदूर आगे बढ़ा। “मुंशी जी, इसने आधे दिन काम किया है, तीन आने दीजिये इसे। परसों भी बैठी रही। दस

बजे तो यह आती है।” मैंने सिर उठा कर देखा और बोला—
 “कौन-सी मजदूरनी ? बुलाओ इधर।” वह मजदूर एक स्त्री
 को साथ ले आया, जो वहीं काम कर रही थी।

एक बच्चा था उसकी गोद में—प्रायः साल भर का। मुंह
 पर चूने के छींटे लगे थे। मैली ओढ़नी। लहंगा समेट कर
 कमर से लपेटा हुआ। खुले पांव, जो कीचड़ से लथपथ थे।
 फीका मुख, निस्तेज आंखें, सूखे होंठ। वह स्त्री डरी-सी, घबराई-
 सी मेरे निकट आई। घूंघट नाक के नीचे तक सरक गया था।
 गोरी और भरी हुई कलाइयों पर पत्थरों के खरोंच और चूने के
 दाग थे। मैंने रजिस्टर की ओर देखा—“दो दिन की हाजिरी
 बारह आने, आधा दिन परसों का पन्द्रह आने।”

वह मजदूर आगे बढ़ कर बोला—“सरकार, नौ आने मिलने
 चाहिये इसे। कल यह बारह बजे चली गई थी। आज काम
 नहीं किया। परसों देर से आई। काट लीजिये पैसे इसके।
 मुफ्त के थोड़े हैं।”

मैंने कहा—“क्यों री ? क्या बात है ? इस तरह पैसे न
 मिलेंगे।” मैं रजिस्टर में नाम देखता जा रहा था, दूसरे
 मजदूरों के।

वह बोली—“सरकार, मेरा बच्चा बीमार है। यह भूठ
 बोलता है। मैंने कल दिन भर काम किया है। बच्चे को बीच-

बीच में सम्हाल भर लिया था। सरकार, गरीब आदमी हैं हम। पूरा दिन लगाइये।”

मैंने नतदृष्टि होकर कहा—“सात और दो नौ, नौ और दस उन्नीस; हासिल लगा एक। नहीं, कभी नहीं, आधा दिन लगेगा। हराम के पैसे नहीं हैं मालिक के।” मजदूर बोला—“सच है, हजूर।”

“लो यह नौ आने !” मैंने पैसे लेकर हाथ आगे बढ़ाया।

धीमी-सी, मुरझाई हुई-सी वह ध्वनि थी—“सरकार, अब से गलती नहीं होगी। ये पैसे तो पूरे मिल जाते, मेरा बच्चा बीमार है। दवा लानी है इसके लिये, सरकार !” उसका गला भर्राया हुआ था। उसने मेरे पांव छू लिये।

मैंने पांव हटाते हुए “अरे दूर ! कह कर उसकी ओर देखा। हैं ! वह परिचित-सी आकृति थी। मेरा सिर घूम गया। वही अल्हड़-सी लड़की, जो हवा के झोंके-सी चंचल, दीवारों से बातें करती, पत्थरों को छेड़ती हुई मेरे बाल बिखेर कर निकल गई थी !

वह पगडंडी के साथ साथ नूपुरों की ध्वनि बिखेरती, यौवन की चठती हुई लहर-सी ! “चुप ! ...कोई सुनेगा...कोई देखेगा। ...जाने दो मुझे !...” वह अन्धकार में लुप्त हो गई थी। पानी के घड़े ने छलक कर पगडंडी को भिगो दिया था। वह खोई-खोई सी उदास, सहमी-सी...अनेकों चित्र मेरी आँखों के सामने

आ खड़े हुए ! मैंने उसे नीचे से ऊपर तक देखा । उसके कलाट पर पसीने की बूँदे चमक रही थीं । उसके होंठ सूखे जा रहे थे । उसने भी मुझे पहिचाना । आँखें फाड़ कर देखा, संभवतः सोई स्मृतियों को जगाया । कुछ मिटे हुए स्वप्नों को एकत्रित किया । बच्चा उसकी गोद में रो पड़ा था ।

मेरे हाथ से रजिस्टर छूट पड़ा । मैं नींद से जागा हुआ-सा, चौंका हुआ-सा बोला उठा—“रानी, तुम हो ! जमना, तुम ?” वह पीठ फेर कर खड़ी हो गई । क्षण भर न जाने क्या सोचा, क्या विचारा और फिर बिना उत्तर दिये घर की ओर चल पड़ी । उसके लड़खड़ाते पांव वेग से उठ रहे थे । कम्पन था उसकी गति में । उसका वह पत्थर उठाने का टोंकरा वहीं पड़ा था ।

मैंने उठ कर पुकारा ..“जमना ! सुनो तो ! जमना ! रानी ! अपने पैसे तो ले जाओ ।” पर वह न लौटी और न घूम कर ही देखा । सभी मजदूर इस घटना से अवाक् थे, आश्चर्यचकित थे । वह मजदूर बोला—“जाने दीजिये, मुंशी जी ! बहुत मजदूरनियां हैं । इस जैसी काम चोर.....

मैंने मजदूरों के पैसे जिन्हें-जिन्हें देने थे दे दिये । मेरा हृदय भारी-सा हो गया था । चित्त खोया-सा जा रहा था । “तुम बन्दर !, तुम्हारा सारा घर बन्दर !” हम हैं रानी !” उसने अभिमान से तन कर कहा था, उसने पैसे भी न लिये । “मेरा बच्चा बीमार है, सरकार ! गरीब आदमी हैं, अब ऐसी गलती न होगी ।” उसके कण्ठ रुंधे हुए थे । उसकी आँखों में दरिद्रता

का दावानल जल रहा था। उसकी कलाईयों पर चूने के दाग थे। मैंने सोचा—उसका अभिमान अब भी जीवित है ! वह पैसे भी छोड़ कर चली गई ! रानी है वह...सचमुच रानी !

मैं अब भी नित्य कोठी पर जाता हूँ, हाजिरी लेता हूँ, पैसे बांटता हूँ, पर अब किसी को आधे दिन की मजदूरी देने का मेरा साहस नहीं होता। मजदूरों की मण्डली जब इकट्ठी होती है तब उस विचित्र मजदूरनी की बात चल पड़ती है। कोई कहता—“बड़ी अभिमान से भरी थी वह।” कोई कहता—“बड़ा क्रोध आ गया था उसे।” कोई कहता—“कौन जाने, भाई, कौन थी वह ! मुन्शी जी भी उसे जरूर जानते थे। देखा नहीं, कैसे दौड़े थे उसके साथ ! कितना पुकारा उसे। पर वाह री औरत ! वह न लौटी—न पीछे मुड़ कर देखा ही !”

वह गोंदी का वृक्ष अब भी फलता है। गोंदी के भुमकों से लाल हो जाता है। उसकी डालियां हवा में नाँच उठती हैं। मैं उसे देखता हूँ, और वायु का सरसराता हुआ-सा एक भोंका “बन्दर...बन्दर !...” कहता हुआ निकल जाता है और तब मेरा हृदय चीत्कार कर चठता है। वह रोता हुआ-सा पुकारता है—“रानी !...ओ रानी ! अपने पैसे तो ले जाओ...”

रविवार की छुट्टी

बच्चों को जूते पहिनाना, दूध वाले का हिसाब करना, सिर के बाल कटवाना, मोरी और पाखाने में फिनाइल छिड़कना, ससुराल वालों को चिट्ठी लिखना, नमक-मिरच, आटा-दाल खरीदने से लेकर नाखून काटने तक का काम रविवार की छुट्टी ही को करना रहता है। उस पर कितनी ही बार बिना बुलाये मेहमानों की खातिर, मित्रों का सिनेमा देखने का निमन्त्रण। यहाँ तक कि जूतों पर पालिश, कपड़ों पर आइरन, मकान की सफाई, किताबों को अलमारी में सजा कर रखने तक का काम इसी दिन की प्रतीक्षा में पड़ा रहता है।

छै दिन के बहत्तर घंटों की गिन्ती पूरी होने पर यह दिन अतिथि की भाँति आता है और उसका स्वागत भी नहीं कर पाते कि निकल जाता है। जिस दिन को छुट्टी मानते हैं, मनका संतोष है कि यह छुट्टी का दिन है, अन्यथा जितने काम इस दिन करने पड़ते हैं संभवतः और किसी दिन नहीं। मैंने अनेकों बार विचार किया है, दिवार ही नहीं प्रतिज्ञा की है कि रविवार को शौच, स्नान और भोजन के अतिरिक्त और कोई काम करूँगा तो वह शयन होगा। वात्स्यायन काम सूत्र में तो शयन की महिमा भोजन के उपरान्त आवश्यकीय बताई गई है, पर मेरे जैसे पराधीन वृत्ति वाले मनुष्य के लिए कदापि सम्भव हो ही नहीं सकता।

तब भी रविवार को यदि राइट ऐंगिज़ में बिना किसी घरेलू विपत्ति की आशङ्का के शयन सुलभ हो जाय तो वह पूर्व पुण्य नहीं तो क्या होगा। श्रीमती जी को मेरे आलसी होने की शिकायत है, और मैं भी अनुभव करना हूँ पर स्वास्थ्य के नियमों की सूचि में शयन का क्या स्थान है यह वे नहीं जानतीं; तभी तो एक कारवट नहीं लेने पाता कि कोई भी साधारण या असाधारण काम का बोझा मेरे सिर पर लाद देती हैं। जब घरेलू आवश्यकताओं का कथानक प्रारम्भ करती हैं तो हृदय में एक ऐसी मर्मान्तक पीड़ा होती है कि जो न किसी आशिक को हुई होगी, न किसी माशूक को। दीवार से सर टकरा लेने की इच्छा होती है, उस पर बच्चों की रुदन-ध्वनि। नौकर पर श्रीमतीजी का कोप प्रलय-पयोद की तरह ऐसी बेचैनी तबियत पर छा जाती है कि जिसका वर्णन सम्भव नहीं। गृहस्थ आश्रम का सुख देव-दुर्लभ माना गया है; यदि वह यही सुख है तो मैं नमस्कार करता हूँ इस सुख को, जिसमें रविवार की छुट्टी का भी उपभोग करना सम्भव नहीं है। दुःख तो तब होता है जब ये घनिष्टता की दुहाई देने वाले मित्र भी उसी दिन अपने कृपा-कटाक्ष से अनुमदीत करते हैं, और अपनी मिलनसारि का दम भरते हैं।

कितनी ही बार आवश्यकीय कामों की आड़ लेकर विवशता प्रकट की है। सिर दर्द और पेट की तकलीफ के बहाने किये हैं। पर ये घनिष्ट मित्र जो रहे, बिना किसी सूचना के भी ऊपर चले आयें तो अपराध नहीं समझा जाता, बैठ गये तो उठने का

नाम नहीं लेते। मेरी पत्नी अनेकों बार खाने के लिए तकाजा भेजती रहती हैं; खाना ठण्डा हुआ जा रहा है। कभी-कभी वे झल्ला उठती हैं और उनका स्वर तीव्रता की सीमा तक पहुँचता है तो मुझे लज्जित होकर कहना पड़ता है कुछ नहीं, कुछ नहीं, बच्चों पर बिगाड़ती रहती हैं, इनका स्वभाव ही विचित्र-सा है। साहस नहीं होता कि मित्र के नाते इनसे कह दूँ कि जाइये, मुझे खाना खाना है, या समय नहीं है, फिर कभी कृपा करें।

पत्नी कहती हैं, बड़े दब्यु स्वभाव के आदमी हो, कह क्यों नहीं देते कि अब जाइये, मुझे काम है, आखिर वे तुम्हारा कर क्या लेंगे। तुमसे नहीं कहा जाता मैं कहलवा दूँ? मैं उत्तर देता हूँ, तुम समझती नहीं, शिष्टाचार भी तो कोई चीज है। वे कहती हैं आग लगे ऐसे शिष्टाचार को, खाना भी तो समय पर नहीं खा पाते, भाड़ में जाय तुम्हारी मित्रता, कल से मना करवा दूँगी, देखें कौन आता है, मैं स्वयम् मना कर दूँगी, यह सराय नहीं है। अच्छे मित्र हुए साहब ?

मैं दब्यु अवश्य हूँ क्योंकि श्रीमती जी मुझ पर शासन करती हैं और उनकी आज्ञाएँ खुले आम मुझ पर रोब जमा लेती हैं, और मैं चुप हूँ।

बकील बिहारीलाल मेरे उन मित्रों में हैं जिन्हें मेरे घर पर आने का स्वयम् सिद्ध अधिकार प्राप्त है। किसी सूचना की आवश्यकता ही वे नहीं समझते, सीढ़ियों पर खांसते, खकारते, अहां हां, खां-खां, खूं खूं करते हुए चढ़ आते हैं।

“अरे भाई, कहाँ गये ?” कहकर कमरे में बैठ जाते हैं। रविवार को तो विशेषतः मौत टल सकती है, पर ये नहीं टल सकते। वैसे बीच में भी यदा-कदा कृपा करते हैं। बिहारीलाल मेरे सहपाठी रह चुके हैं, अस्तु शिष्टाचार का तो प्रश्न ही नहीं वे सुझे तुम कहते हैं तो उनका अनुग्रह है अन्यथा अबे और तू तड़ाक से ही वार्तालाप प्रारम्भ करते हैं; ऐसी की तैसी तो मेरी प्रतिक्षण होती रहती है। फि-हि-हि-हि करके हँस पड़े तो पड़ोस वालों की नींद तक खराब हो जाती है। तब भी ये मेरे मित्र हैं, और पुराने मित्र हैं। पचास की आयु में भी जवानों के कान काटते हैं।

आज रविवार है, अभी भोजन भी नहीं कर पाया कि बिहारीलाल दरवाजे से पुकार रहे हैं, “भाई, हो क्या ? जवाब भी नहीं देते यार, ऐसा भी क्या ?

श्रीमती जी ने गिड़की में हाथ डाल कर नकार सूचक संकेत किया पर इय संकेतों का मूल्य ही कितना था उनकी दृष्टि में। वे कहते हुए ऊपर चढ़ आये कि हर्ज ही क्या है नहीं हैं तो अब आ जायेंगे, दो घड़ी का इन्तजार ही सही, बात क्या है।

उन्होंने अपनी छड़ी कोने में रख दी और इतमीनान के साथ मोहनी का बन्दल फाड़ कर एक बीड़ी सुलगते हुए कुरसी पर बैठ गये। बन्दल जब तक समाप्त न हो जाता तब तक तो उठने की कोई आशा नहीं है। उसे दैवी गति का भरोसा ब्रह्म का भी दया है। मैंने सोचा बीड़ी विपत्ति है, पदिले मना कर दिया अब

सामने जाता हूँ तो कुछ अनुचित-सा प्रतीत होता है। तब भी आखिर कब तक छुपा बैठा रहता। मैंने सीढ़ियों पर जूते की खटपट आवाज करते हुए कमरे में प्रवेश किया।

वे उपालम्भ की भाषा में बोले—यार; इन्तजार की हद होती है, एक तो तुम्हारे घर आते हैं उस पर जवाब मिलता है यहाँ नहीं हैं, न कोई सम्मान, न आवभगत, न चाय, न नाश्ता, ऐसे मनहूस हो कि बीड़ी तक का खर्चा नहीं रखते।

मैंने कहा, क्यों खफा हुए जाते हो। बाजार से आ रहा हूँ साग-भाजी खरीद कर, नाक में दम है, जान निकल गई। इन नौकरों को तो सच कहता हूँ वह सजा मिलनी चाहिये जो चोरों को भी नहीं मिलती। हरामखोर कहीं की, नौकरानी क्या है आफत है, दो दो रोज गायब रह जाती हैं, मुफ्त की तनख्वाह कब तक दिया करे कोई। आने दो उसको अभी हिसाब चिये देता हूँ, समझ क्या रहा है, उसने, भला बताइये तो ? ऐं।

वे बोले—बात क्या है, कौन नौकरानी ! किस का हिसाब ?

“अरे भई, वही घर की नौकरानी, आसमान पर दिमाग हैं उसके, बड़ी राजरानी बनी फिरती है। नखरा देखो तो बाहरे ?”

“जाने भी दो, लो सुनगाओ एक बीड़ी, सारे गम रफा-दफा हो जायँ। भई बीड़ी भी भगवान ने क्या चीज बनाई है, यों कहिये की सारे दुःखों की एक दवा है, एक फूंक में सब चिन्तायें उड़ जाती हैं इसलिए जितने अच्छे दिमाग के लोग हैं, बीड़ी-

सिगरेट हुक्का, कुछ भी सही, पीते अवश्य हैं, चर्चिल साहब को लेजा, सिगरेट के कारण ही ऐसी बुद्धि पाई है। खैर जाने दो इन बातों को। हां, यह नौकरानी यानी कि तुम्हारे घर की नौकरानी हैं, देखा तो नहीं कभी, वही न, गोदू की माँ।”

“नहीं जी, उसकी छोटी लड़की है जिसकी गये साल शादी हुई थी। आजकल वही काम करने आती है, पर ऐसी कामचोर है कि क्या कहूँ, निकालना पड़ेगा इसको, बरदास्त करने की हद होती है, मैं नहीं रखने का।”

वे बोले—“जाने भी दे, ज़रानि के चढ़ते दिन हैं, यह उमर ही, तुम्हारे सिर की कसम, बड़ी बदजात होती है; हाय रे हाय ! न आये किसी को यह ज्ञात हो,” उन्होंने एक लम्बी सांस छोड़ कर कहना शुरू किया।

“भई मजदूरों पर, नौकरों पर कभी गुस्सा नहीं होना चाहिये। जयप्रकाशनरायण की सीच सुनो है तुमने ? क्या कहते थे ?”

मैंने कहा—तुम्हारा सिर कहते थे, आसमान पर चढ़ा दिया है इन नौकर पेशा लोगों को, मेहनतों की हड़ताल, मजदूरों की हड़ताल...चलेगा दुनियाँ का काम ! रहने दो अपनी हमदर्दी। मैं उसे निकाल कर रहूँगा, बुरा है मेरा गुस्सा, लाओ, निकालो एक बीड़ी।

बिहारीलाल ने और मैंने एक-एक बीड़ी सुलगाई। बिहारीलाल ने एक फूंक जोर से खींच कर कहा—निकाल ही रहे हो

तो हमारे यहां रखदो उसे। बेचारी काम कर दिया करेगी, मुझे नौकर की आवश्यकता भी है और सच तो यह है भई मास्टर। मुझे तो मजदूरों से बड़ी हमदर्दी है। बेचारे कितनी मेहनत करते हैं, कितने दुःख चठाते हैं। मजदूरों के प्रति उदारता और सहानुभूति दिखलाना ही सच्ची देश-भक्ति है। दो पैसे ज्यादा दिये कि ये लोग खुश, मीठा बचन बोले कि जान हाजिर कर देते हैं, मजदूरों को ऊपर उठाना ही हम सब का कर्तव्य है, उस पर वह रत्ती।

“रख लो मैं क्यों मना करूँगा, कल ही से बुला लो अपने यहाँ, सारा हमदर्दी उस ही पर समाप्त कर दो, मुझे क्या है।”

बे कहते रहे—मैं तो मजदूरों के लिए बहुत कुछ करना चाहता हूँ। जयप्रकाशनारायण सच कहते हैं। हमारा देश मजदूरों का देश है, उनकी भलाई हमारी भलाई है, मैं तो बीसियों मजदूरों को नौकरी दिलवा चुका हूँ। उनकी तनखाह बढ़वा चुका हूँ। उनके जलूसों में झन्डा लेकर चला हूँ। गांधी जी के साथ कई बार हरिजन बस्ती में गया हूँ, गांधीजी ने प्रशंसा की है, मेरे कामों की, जी हाँ? खैर तुम विश्वास न करो भई, सोचो अगर तुमने नौकरानी को निकाल दिया तो बेचारी कहां दूसरी नौकरी ढूँढ़ती फिरेगी। आखिर वह कहाँ जायगी।

मैंने कहा—“जहन्नुम में जायगी। यार बड़े मक्कई मालूम होते हो। कह तो दिया, अपने यहाँ रखलो, कर लो उससे अभि

सारी बातें, बुलाऊँ उसे ?” इन बातों में बीड़ी का मजा ही जाता रहा ।

“अरे ओ चतुरी ।”

“अरे चतुरिया, सुनती है या नहीं ?”

“सुनती होगी तब भी न बोलेगी, मैंने कह तो दिया बड़ा अभिमान हो गया है उसको । खैर, आ जायगी, किसी काम में लगी होगी । तब तक कुछ नाश्ता कर लेते, मँगवाऊँ थोड़ी मिठाई ।”

उन्होंने रोकते हुए कहा—भई आज हमारी तरफ से नाश्ता रहा । लो ये दो रुपये, मिठाई-नमकीन जो चाहो मगवा लो ।

“खातिर मुझे करनी चाहिये थी क्योंकि तुम मेहमान हो, लेकिन बुरा भी क्या है । आखिर तुम्हारी जेब के पैसों का इससे अच्छा उपयोग और हो भी क्या सकता है ।”

उन्होंने कहा, “दो जरदे के पान भी लेते आना ।”

मैं यह कहता हुआ चला गया कि चतुरिया को बुला कर बातें कर लो—क्या तनख्वाह लेगी, कितने समय तक काम करेगी इत्यादि । लेकिन बड़ी शरमाती है । मुश्किल से आयेगी । और फिर उसका मिजाज न कहिये कुछ ? सितम है सितम, मुसीबत ।

बकील साहब ने बीड़ी का धुआँ उगलते हुए दरवाजा के धोड़

पर सवारी की और रूप की उस दुनियां में उड़ गये जहाँ चतुरी जवानी की शोभा के भार से आनत नवनीत जैसे कमनीय कलेवर पर विचित्र भङ्गिमायें अङ्कित करती हुई मादक स्वप्नों के भूले में भूल रही थी। उसकी मुस्कान में जादू जैसा आकर्षण और आँखों में रस के सागर भरे हुए थे। उसके बालों पर काजल-सी रातें और होठों पर प्रभात की लाली कुरबान हुए जा रही थी वह एक दृष्टि में रोमान्स की दुनिया आबाद कर देती थी। उसकी चितवन में चञ्चलायें चमकती थीं। अलकावलियों में सावन के मेघ भूलते थे। दांतों की चमक मोती बखेर देती थी। कुटिल भ्रू विलास हृदय को आहत कर डालता था।

उनके सामने कभी वह गुलबकावती बनकर आई, कभी परियों की रानी और कभी तोता-मैना की दास्तान में वर्णित सात समुद्र पार की राजकुमारी ! वकील साहब का स्वप्न जब गत विस्तार की सीमा तक पहुंच गया। उनके अन्तर ने एक ठन्डी आह भरी। कलेजे में बरछियों का आघात अनुभव किया। आँखों में प्रेम की लाली छा गई, बीड़ी के धुये में उन्होंने देखा हजारों मजनुओं की आकृतियाँ बन-बन कर भिगड़ रही हैं, हजारों लैलायें मुँह पर नकाब डाले महफिल में बैठी चली जा रही हैं। चतुरी के उभरे हुए कपोल लोचदार कलाइयाँ...लेकिन मिजाज कुछ कड़ा है...हुआ करे, रुपये से क्या नहीं होता, एक दस का नोट उसे पिघला कर मोम कर देगा। पच्चीस मासिक दूंगा, मजाल है उसकी ना कर दे, हो ही नहीं सकता। किन्तु उन्हें

अपने सफेद बालों पर बड़ा दुःख होता था। उस समय ही दाढ़ी-मूँछों पर अधिकार जमा रहे थे। खैर हुआ करे, पचास तक तो ज़राना ही समझी जाती है। नजले ने सब कुछ चौपट कर दिया। तब भी इन सब बातों का महत्त्व ही क्या है। उन्होंने बीड़ी का गुल भाड़ा और कुछ सत्कर्त होकर आवाज लगाई।

“चतुरी ! अरे गोदू की बहन, सुन तो जरा, यहां आ तो, एक बान सुन जा, अरे ए, चतुरी। चतुरिया !”

तीन चार आवाज लगाने पर चतुरी की एक झलक दिखलाई पड़ी। मरा हुआ शरीर, बारीक किनारी की धोती में लिपटी हुई अंगुलियों पर घूँघट सँभाले डरती सी, दरवाजे से लगकर खड़ी हो गई। उसने घूँघट को मुँह पर डाले ही एक बार देखा और पीछे हट गई।

वकील साहब की ओर देखकर पुनः उसने आंखों का एक तीर नजर छोड़ा और झिमट कर खड़ी हो गई। उसकी धोती से निकली हुई सैन्ट की खुशबू ने एक मादकता का वातावरण उपस्थित कर दिया।

वकील साहब ने कहा—डरती क्यों है इतनी ? बात सुन ! मुझसे शरम किस बात की ! अरे मुझे तेरी माँ जानती है। तेरा भाई जानता है। ले यह दस का नोट। ले अच्छी सी साड़ी खरीद लेना। समझी। कल से हमारे यहाँ आ जाना—पच्चीस तनखाइ दूँगा। काम जो यहाँ करती है उससे आधा भी नहीं

है। काम ही क्या है। उन्होंने नोट आगे बढ़ाया। चतुरी पीछे हटी...उहूँ...न...उहूँ...कह कर अपनी एक कलाई किंचित धोती से बाहर निकाल कर मना कर दिया। वे कहने रहे ले लो... अरे ले लो बात क्या है। मैं खुश होकर बै रहा हूँ, किसी से कुछ डरने की बात नहीं है। उन्होंने नोट देने के लिए दो कदम और आगे बढ़ाये। चतुरी हटकर बहुत पीछे तो नहीं गई पर लावण्य से भरी हुई एक भङ्गिमा दिखानी हुई नकार में भी मानो स्वीकृति प्रकट कर रही हो, इस प्रकार भाव प्रदर्शित करती हुई खड़ी रही। वकील साहब कहते रहे, हमारे यहाँ कपड़े, अच्छी-अच्छी चीजें, बहुत आराम मिलेगा। इनके यहाँ क्या रखा है, समय पर तनखा भी नहीं मिलती होगी, ये भ्रम क्या पाते हैं जो नौकर रखेंगे? हमारे यहां रानी बन कर रहेंगी, रानी, तो यह नोट ले लो...लो भी...यह कहते हुए उन्होंने चतुरी को किंचित छू लिया।

वह उहूँ...मान जाओ, फुसफुसाकर कहती हुई उनके अधिक निकट आ गई और नेट लेकर प्लाउज में रख लिया। उसकी अंगुलियों के स्पर्श में प्रेम का निमन्त्रण प्रकट होता हुआ वकील साहब ने अनुभव किया। किसी के देख लेने के भय से उनका हृदय धड़क रहा था, शरीर काँप रहा था, पाँव लड़खड़ा रहे थे, मुख पर विवशता और आतुरता का द्वन्द्व प्रकट हो रहा था, वे दीनता से बोले—

“चतुरी.....चतुरी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, किसी से न कहना...” उनकी हिम्मत के पर निकल आये, उसने फड़फड़ा कर

उड़ान भरी, वे आगे बढ़े, चतुरी लज्जा में लिपटी हुई-सी उनके निकट आ गई, उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रखा, कलाइयों का स्पर्श करना चाहा, छुरियों और बरछियों के घाव अपने दिल पर लगाने की दुहाई दी, तड़ाने और घायल हो जाने के भाव प्रकट किये, आहों की ठण्डक और दिल की जलन का विरोधाभास निवेदन किया। उनका प्रेम आंसू बहा देगा, दिल की आग से समुन्दर सूख जायेंगे। सब कुछ प्रेम में होने वाले लक्षणों की सूची चतुरिया के सामने रख दी पर चतुरिया का दिल और प्रेमिकाओं जैसा पत्थर का बना हुआ नहीं था, उसका दिल मोम से बना था, तभी तो वकील माहव ने दस मिनट की भूमिका में एक हजार माइल की लम्बी यात्रा तय करली थी। उनके हाथ उस अनधिकार तक पहुँच गये थे जहाँ तक पहुँचने के लिए मजनूँ ने जान दे दी थी, फरहाद ने सिर फोड़ लिया था।

चतुरी की नकार सूचक ठिठई ने आश्वासन का पहिला संकेत किया ही था कि वहील साहब का हाथ उसके घूँघट पर पहुँच गया। वह उहँ-ना करती ही रही, और एक क्षण में सिर पर से घूँघट खसक कर पीछे की ओर गलट गया।

वे अवाक थे, उनकी आंखें फटी-सी रह गईं, मेरी सूरत देख-कर—चौड़े कंधों पर प्लाउज कसा हुआ था। सफेद मूँछें और टमाटर सी गञ्जी खोपड़ी घूँघट के हटते ही निकल आई थी, गरदन के नीचे प्लाउज के बटनों में से सीने के बाल अपनी बहार दिखता रहे थे, बेडौल शरीर, मोटी कलाइयाँ जिन पर चारों

और बालों की तद जम रही थी, काँच की चूड़ियों से ऐसी लगती थीं, जैसे किसी जन्तु के गले में रंगीन डोरे बांध दिये गये हों। शृङ्गार रस में भयानक रस की इस आवृत्ति ने ऐसा पट-परिवर्तन किया कि वकील साहब भ्रम में पड़ गये। मेरी हँसी ने उन्हें पानी-पानी कर दिया जो मुगद्दी की गरदन में रुके शब्द की तरह फूट गयी थी।

वकील साहब से मिठाई के रुपये लेकर मैं अपनी स्त्री के कमरे में गया और सन्दूक से यह धोती निकाल कर मैंने पहिन ली थी। ग्लाउज भी किसी तरह खंन-खांच कर कस लिया था। चूड़ियाँ मुश्किल से कलाई में उतारी थीं। यह सब काम किया ही था कि वकील साहब का आवाहन प्रारम्भ हो गया। मुझे विश्वास नहीं था कि वे इतना धोखा खायेंगे पर कालिदास की उक्ति के अनुसार 'कामी जन विवेशून्य होते हैं' सत्य ही निकला। मेरी स्थूल और लावण्य को स्पर्श न करने वाली आकृति में उन्हें चतुर्गुण का रूप दिखलाई पड़ गया। आश्चर्य ही बात।

वकील साहब मेरी हँसी सहन न कर सके, कुचले हुए सांव की तरह फुफ्फुकार उठे, हारे हुए जुआरी की तरह खीझ उठे, भन-भना कर बोले—

“तानत है उस पर जो आज से तुम्हारे घर पर पांव रखे। ऐसी मजाक ! किसी का अपमान करते हो घर बुना कर। वाह साहब क्या समझ रखा है तुमने मुझे। वैश्वजती करके ऊपर से हँसते हो। देखली तुम्हारी दोस्ती.....।

मैंने कहा—नाराज हुए जा रहे हो, माफ़ कर दो। तुम्हें चतुरी की कसम है, तो यह अपनी मिठाई तो खा लो, और यह अपना नोट। चतुरी लेकर क्या करेगी, वह तो तुम्हारे प्रेम की प्यासी और कृपा की भूखी है।

उन्होंने क्रोध में लाल होकर कहा—बस रहने दो, हो चुकी तुम्हारी दिल्लगी। हृद से गुजरे जा रहे हो। उसकी ऐसी तैसी जो आज से तुम्हारी तरफ़ नज़र भी उठाये। तुम से बात करे। वे झल्लाते हुए एक सांस में सीढ़ियां उतर कर रास्ते में जा निकले। मैंने खिड़की से भांक कर कहा—अरे सुनिये तो, अरे भाई मिठाई भी, नोट भी, सब छोड़ जा रहे हो, यह क्या अन्धेर है। तुम्हें मेरे स्मिर की कसम, सुनो तो। अजी सुनिये साहब। अमा सुनो...सुनो तो...पर वे नहीं लौटे। उस रोज़ रविवार की छुट्टी दो रुपये की मिठाई के नाश्ते से बड़ी मजेदार रही। दस का वह नोट उन्होंने किसी तरह वापस नहीं लिया। उनका क्रोध आज तक भी शान्त नहीं हुआ। चतुरिया के नाम पर वे गालियां देने लगते हैं, लड़ने को प्रस्तुत हैं, पर मुझे हमेशा उनके गुप्ते पर प्यार आया है, और आता रहेगा।

अपरिवित

नदी बहती चली आ रही थी—वेग से भरी, वर्षा के प्रथम जल से उमड़ती, पर्वतों को फोड़ती, चट्टानों को तोड़ती, किनारों के वृक्षों से स्लभती, धूल-मिट्टी को बहाती, मस्ती के गीत गाती लहरों से चंचल होती हुई ।

वह उस वृक्ष के निकट होकर निकली जिसका कल्लेवर फल कर, फूल कर चारों ओर से विस्तृत होता हुआ चला जा रहा था । उसकी छाया में शीतलता निवास करती थी । वह आयु के विकास के भार से झुका जा रहा था । वह मानों अपनी शाखाओं से आकाश को छूने का साहस कर रहा था । उसकी गंध से वायु के रोम-रोम में सिहरन-सी हो उठती थी । वह उस निर्जन का महान पादप था ।

नदी ने कहा—हट एक ओर, मैं आ रहा हूँ, ओ वृक्ष ! रास्ता छोड़ मेरा ।

वेग से छलछला कर नदी ने गर्व से भृकुटियों पर बल खाते हुए सर्प की आकृति अङ्कित की ।

शीघ्रता से अपना चरण आगे बढ़ाते हुए उसने वृक्ष की ओर दृष्टिपात किया । असंख्य लहरों ने एक साथ हुंकार-स्वर विस्फूर्जित किया ।

‘मैं आ रही हूँ’। नदी ने पुनः सूचित करते हुए वृत्त की ओर अपना चरण उठाया।

‘हट जाओ, वृत्त ! मेरा वेग रोके न रुकेगा !’ नदी ने चिल्ला कर कहा।

वृत्त, नदी का उग्र रूप देख कर थरा उठा। काँपते हृदय से साहस एकत्र कर बोला—‘तुम ही एक ओर से निकल कर चली जाती तो बड़ी कृपा होती, सरिता देवी ! मैं-मैं कैसे एक ओर हूँ ! गति नहीं मुझ में। स्थिरता है। मैं हिल नहीं सकता। तुम सालता से बचकर निकल जाती। तुम्हारे वेग से भय लग रहा है मुझे। अपनी शक्ति का दुरुपयोग होगा, देवि ! बल समान को दिखलाया जाता है। मैं विवश हूँ। किसी शैल के सम्मुख यह गर्जन-तर्जन करती तो यथार्थ होता। मैं युगों से खड़ा हूँ। खड़ा रहूँगा। तुम दूसरे मार्ग से भी जा सकती थीं। मुझे बचाकर निकल जाओ, कल्लोलिनी ! मेरा जीवन नष्ट करके तुम्हें क्या मिलेगा ?

नदी ने कहा—‘बचकर क्यों ? किस लिये ? यह मेरा मार्ग है। तुम्हें रुटना ही पड़ेगा, नहीं तो जानते हो, क्या होगा ? मेरे वेग के एक ही धक्के में तुम्हारी साँस उखड़ जायगी। युगों से खड़े हो तो मैं क्या करूँ ? कहीं एकान्त में खड़े रहते। मार्ग के बीच में पद्मासन लगाकर प्राणायाम करने की क्या आवश्यकता थी ? हट जाओ एक ओर ! मैं सावधान किये देती हूँ। यह लो, मैं आई !’

धर र र र र र ! छर र र र र !.... नदी का पानी क्रोध से धरधा कर उछला । साँय-साँय के निश्वास नदी के मुँह से निकले । विकट वेग से वह आगे बढ़ी—भूमती हुई, घूमती हुई, पागल हुए गायन्द की गति से ।

वृक्ष दीनता से चिल्लाया—‘हैं ! हैं !! यह क्या ? यह क्या कर रही हो, सरिता ! मैं उखड़ जाऊँगा । मुझे, मुझे बचाओ । यह तुम्हारी विकराल लहरों से भरा वेग ! मुझ में गति नहीं ! विचार करो । दया करो मेरी अवस्था पर, नदी ।’

‘मैं क्या जानूँ तुम में गति नहीं है ? और क्या-क्या नहीं है, और क्या है । मेरे मार्ग का अवरोध जो भी करेगा नष्ट हो जायगा । मैं किस-किस को :चाऊँ ! हट जाओ ! मैं नहीं रुक सकती, नहीं बचकर निकल सकती । मैं आती हूँ ।’

नदी के वेग-भरे स्वरो से जंगल गूँज उठा ।

वृक्ष का क्रन्दन स्वर हवा में बह निकला । वृक्ष का पत्ता-पत्ता काँप उठा । सहसा गम्भीर घोष से, उम्र स्वर में किसी ने कहा । अन्तरिक्ष से यह ध्वनि हुई—‘सरिता ! इतना गर्व ! इतना अन्याय ! शक्ति का यह दुस्प्रयोग ! जाननी हो इस वृक्ष के मूल में तुम्हारी आत्मा का एक अंश है, इससे तुम्हारे निकट संबन्ध हैं पर तुम परिचित नहीं । क्या जानो तुम वह भेद, वे बीती हुई बातें ! क्या थीं तुम ? कहाँ से आई ? कब और किस समय ? क्या था तुम्हारा अस्तित्व ? यह तुम्हारी बिसात ?’

मुक्त-हास की धारा बिखर पड़ी—हि ही ही ही ही ?

‘एक बिन्दु-सी तुम ! क्षणिक जीवन की उपमा-सी तुम !
लघु, अकिञ्चन ! आज इतरा रही हो अपने बल पर, जो क्षणिक
है । नवेल ! पहचानती हो मुझे ? याद है उस जन्म की बात ?’

हँसी ही उन्मुक्त धारा में नदी का गर्जन डूब-सा गया । वह
सतर्क होकर बोली, साश्चर्य, उपेक्षा से :—

‘कौन हो तुम ? किससे बातें कर रहे हो ? बोलो, कौन हो
तुम ? मुझसे सम्बन्ध जोड़ रहे हो ? देखूँ तो कौन हो, कहाँ
हो तुम !’

‘सरिता ! मैं जो कुछ हूँ, जहाँ हूँ, सुनोगी अपनी जन्म
कहानी, तुम्हारे-मेरे सम्बन्ध का पुरातन इतिहास ? सरिता,
तुम मुझे नहीं जानती, पर मैं तुम्हें जानता हूँ । मुझे भय दिखाने
का प्रयत्न मत करो । मैं तुम्हारे शक्ति से अपरिचित नहीं हूँ, जो
तुम में एक निश्चित समय के लिए उत्पन्न हो गई है । यह बर-
साती पानी का वेग कितना आया और चला गया ।

‘मेरा—तुम्हारा इतिहास ! कैसा इतिहास ? सुनाओ भी
मुझे, अधिक रुकने का अवकाश नहीं है । विचित्र बात है । मेरा
भी कोई भेद है ? आखिर हो कौन तुम ? अपना परिचय दो !
कब तुम्हारा—मेरा सम्बन्ध रहा है ?

हि ही ही ही ही ही... ! उद्‌हास करते हुए स्वर ने कहा—

‘सुनो, सरिता ! युग व्यतीत हो गये, जब न तुम थीं और न मेरा यह रूप । पवन का एक भोंका नाचता हुआ, आकाश को छूता हुआ, पृथ्वी के अङ्गों को गुदगुदाता हुआ, वृक्षों की पत्तियों को छेड़ता हुआ, मादक गति से लड़खड़ाता, कुछ मन ही मन गुनगुनाता, अपनी ही मस्ती में धूल, मिट्टी, ककड़, पत्थर तिनके भोला में भरे चला आ रहा था—कभी इस ओर, कभी उस ओर चक्कर काटता । देश-देश की मिट्टी के कण ये उसके साथ—वे सूखे पत्ते जो बसन्त की बीती हुई घड़ियों के चाण-चिन्ह थे, वे छप्परो के तिनके जो किसी गरब की भोंपड़ी को छिद्रमय बना आये थे, वे फूल की पंखुड़ियाँ भी जो मुरझा कर सूख चुकी थीं—सबको साथ लिये उड़ा आ रहा था अविराम, क्षिप्र गति से ।

‘कुछ धूलि के कणों के साथ एक बीज भी उड़ चला । भोंका न जानता था उसके साथ कौन-कौन हैं, कहाँ के वासी हैं । वह उड़ने की धुन में मस्त था । कितने ही क्षण उड़ चुकने पर भोंके का वेग शान्त हुआ । उसके अङ्ग श्रम से शिथिल होकर गतिहीन से हो चले । सूखे पत्ते, फूलों की पंखुड़ियाँ, छप्परो के तिनके, धूलि कण सब जहाँ-तहाँ गिरते गये, भोंके से अलग होते गये । भोंके का शरीर हल्का-सा हो गया पर न तो भोंके ने यह जानने का प्रयत्न किया कि उसके साथ कौन-कौन थे और न साथ होने वालों ने भोंके से कोई बात की । अपरिचित, सब एक दूसरे से अपरिचित, निरुद्देश्य घूम रहे थे ।

‘वह बीज भी एक स्थान पर गिर पड़ा, जो भोंके के साथ था ।

भोंके ने बीज की ओर दृष्टिपात तक न किया। वह चला गया— अपनी धुन में, गुनगुनाता हुआ, भरभराता हुआ। बीज निस्तब्ध पृथ्वी पर पड़ा रहा। तीन, चार धूलि-कण अब भी उसके साथ थे। बीज की चेतना उड़ते-उड़ने, घूमते-घूमते लुप्त भी हो गई थी। वह सुधिहीन-सा था। कितनी ही घड़ियाँ, कितने ही क्षण आये और निकल गये। बीज कब आया था, कब भोंके के साथ उड़ा था—न बीज को याद रही न क्षणों ने विचार किया। बीज को न वर्तमान का ज्ञान रहा न भूत अथवा भविष्य का। धूलि के कितने ही कण उसके ऊपर आ-आ कर बैठते रहे। बीज का कलेवर ढक गया। वह चिर निद्रा में कुछ काल तक सोता रहा— निश्चेष्ट।

‘पृथ्वी के महान, विस्तृत अङ्क में उसका क्या अस्तित्व है यह न बीज को ज्ञात था न पृथ्वी को। बीज का चिह्न तक शेष न रहा। वह मिट्टी के नीचे दब गया। कितने ही हवा के भोंके उसके ऊपर होकर निकल गये।

‘आषाढ़ के प्रथम मेघ ने आसमान में गर्जन किया। विद्युत् की क्षीण रेखा पयोद के अङ्क में चंचल हो उठी। मेघ के गम्भीर घोष से मयूरों के हृदय नाँच उठे। मेघ गरजता रहा, गरजता रहा। क्या अभिलाषा है उसकी, वह स्वयम् निश्चय न कर सका। तृषित पृथ्वी का धरातल गरम साँस ले रहा था। उसके निश्वास मेघ के हृदय को स्पर्श कर जाते थे। तब मेघ के हृदय

में मंथन-सा हुआ, वह गरज उठा। कुछ क्षणों के पश्चात् मेघ एक निश्चय तक पहुँचा और.....

‘और एक अज्ञात मुहूर्त में जल की नन्हीं-सी बूँद मेघ के अन्तर से निकल कर पृथ्वी पर आ गिरी—शीतल, स्वच्छ, मुक्ता-फल-सी धवल ।

‘वह धूलिकणों को स्पर्श करती पृथ्वी के अन्तस्तल तक पैठ गई, जहाँ बीज अचेतन अवस्था में सो रहा था ।

‘जलते हुए धूलि के कणों ने शीतलता का अनुभव किया । विन्दु के कोमल स्पर्श से बीज भी जाग उठा । उसने अंगड़ाई ली । करवट बदली । उसमें नव-जीवन का संचार हुआ ।

‘बीज ने विन्दु का आलिङ्गन कर लिया । विन्दु शरमा कर सिमट गई । उसके कपोल आरक्त हो उठे । बीज ने कहा—‘प्रियतमे !’

‘बीज के ओष्ठ विन्दु के अधर से जा लगे ।

‘विन्दु ने क्षीण स्वर में कहा—‘प्रियतम !

‘बीज और विन्दु गले लग कर सो रहे । एक ने दूसरे के अन्तर में स्थान बना लिया । धूलि के कण छिप-छिप कर देखने लगे । उन्होंने अपनी हँसी होठों में बन्द करली !

‘बीज ने कहा—‘तुमने मुझे जीवन दे डाला प्रिये !’

‘बिन्दु ने कहा—‘मैं धन्य हो गई प्यारे बीज !’

‘मेघ बरसने लगा । चारों ओर असंख्य बिन्दुओं ने जल ही जल कर दिया । वह-वह निकला । प्रथम बिन्दु भी बीज से विदा लेकर चलने को उद्यत हुई । वह बोली—‘मैं अपनी सहेलियों के साथ जा रही हूँ, बीज ! आज़ा ! मैं चली ! मैं चली !’

‘बीज पुकारता रहा, सुनो तो बिन्दु ! कुछ समय और ठहरो प्रिये ! रुक जाओ, बिन् ! पर वह न रुकी । होठों पर हँसी बिखेरती हुई अपनी सहेलियों में जा मिली । बीज कहता रह गया—‘निष्ठुर ! चली गई तुम—आह !

सरिता स्तब्ध, अवाक्-सी खड़ी रह गई । उसका मस्तिष्क घूम गया । एक क्षीण स्वर ने कहा— ‘प्यारे बीज ! मेरी ओर देखो मैं हूँ तुम्हारी बिन्दु ! यहाँ इस ओर । इस लहर के अन्तर में । तुम्हारी याद मेरे अन्तर में जीवित है बीज !’

बीज ने आँखें फाड़ कर देखा, पर उसे बिन्दु न दिखलाई पड़ी । उसने चिल्ला कर कहा :—

‘प्रिये बिन्दु ! मुझे तो नहीं दिखलाई पड़ रही हो तुम । कहाँ हो ? किधर हो ? यहाँ आओ मेरे अन्तर में । मैं यहाँ हूँ— यहाँ इस वृक्ष की शाखा से निकले हुए अरुण किसलय के अन्तर में, मंजरी में, इस कुसुम में । देखो, मेरी ओर देखो, बिन्दु ।’

बिन्दु ने हताश होकर कहा—‘मुझे भी तुम नहीं दिखाई दे

रहे हो बीज ! कहीं भी तो नहीं । केवल तुम्हारा स्वर सुनाई पड़ रहा है । मेरे निकट आ जाओ बीज !'

बीज ने ठंडी साँस लेकर कहा— 'बिन्दु ! मैं कैसे आऊँ ?'

और बिन्दु ने कहा — 'बीज ! मैं भी किस प्रकार तुम तक पहुँचूँ ?'

बिन्दु छटपटा कर रह गई । बीज भी अपने प्रयत्न में असफल रहा ।

बीज बोला— 'बिन्दु ! हमारा वह शरीर नष्ट हो चुका है । मैं वृक्ष बन गया हूँ और तुम सरिता । केवल हमारी मिलन-बेला के वे क्षण भूमि के धरातल पर अंकित रह गये हैं, जिन्हें ये असंख्य धूलि-कण अपनी आँखों से देख रहे हैं । हमारा इतिहास पवन के स्वरो में गूँज चठता है । मैं तुम्हारे वियोग में आज भी जल रहा हूँ, बिन्दु ! और यह अभिलाषा लेकर जीवित हूँ कि हमारा मिलन पुनः हो जाय; किन्तु यह मिलन वियोग से भी अधिक दुःखदाई है, जब हम इतने निकट होकर भी बहुत दूर हैं । केवल वाणी ही सुन सकते हैं—वह भी अस्पष्ट ।

बिन्दु ने कहा— 'बीज ! कब हम मिल सकेंगे । पूर्ववत् हृदय से हृदय लगा कर जब तुम कहोगे— 'प्रिये बिन्दु !' और मैं कहूँगी— 'प्यारे बीज !' क्या यह सम्भव नहीं ? किसी भी प्रकार ?

बीज ने दुःखित होकर कहा— 'प्रिये ! तुम्हारा-हमारा मिलन अब अगले जन्म में होगा । मुझसे मिलने के लिये तुम्हें अपना यह रूप छोड़ कर नन्हीं वूँद बनना पड़ेगा और मुझे वृक्ष का

विशाल आकार छोड़ कर लघु बीज ! तब हम मिल सकेंगे पूर्ववत् । तब तक हम मिलन की आशा में जी-जी कर मरते रहेंगे, मर-मर कर जीते रहेंगे । कामना करो बिन्दु, कि तुम पुनः सरिता से बिन्दु बन जाओ और मैं वृक्ष से बीज । इस साधना के लिए हमें प्राणों की बलि देनी पड़ेगी, बिन्दु ! युग व्यतीत हो जाने पर । तुम्हारा हमारा नया जन्म होगा । प्रिये ! वह मिलन-बेला कितनी सुन्दर होगी, जब मैं धूलि के कणों के नीचे दबा हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा और तुम आपद के प्रथम पयोद के अन्तर से दुलक कर मेरे अंक से आ लगोगी । मैं तुम्हें अपने अन्तर में स्थान दूँगा, और तुम.....'

मिलन की इस मधुर कल्पना ने बीज और बिन्दु दोनों को पुलकित-सा कर दिया । वे आनन्द-विभोर हो उठे और अपनी आँखों के आँसू पोंछ कर पुनर्मिलन की साधना में रत हो गये ।

सरिता को बिन्दु बनने की प्रतीक्षा थी और वृक्ष को बीज बनने की ।

सरिता ने मौन आश्चर्य-चकित अपना चरण उठाया । दौड़ कर वृक्ष के गले से लिपट गई ।

वृक्ष के अन्तर से एक अस्पष्ट-सी ध्वनि निकल कर कहीं खो गई !

सरिता हँस कर निकल गई—तीव्र वेग से छलछलाती—लहराती ।

बिन्दु और बीज की आत्मार्थे आनन्दाश्रुओं से भीग गईं ।

अन्तिम परीक्षा

फिर तुमने वही अनधिकार चेष्टा की !

‘तुम व्यर्थ क्रोधित हुए जा रहे हो, हेमाङ्क ! प्रभास ने स्वाभाविक सुलभता से उत्तर दिया ।

हेमाङ्क क्रोध के उसी आवेश में कहता गया, ‘प्रभास ! तुम्हारी दुष्टता अपनी चरम सीमा को पहुँच चुकी है । निर्लज्ज हठी युवक, तुम्हें सावधान किये देता हूँ, यदि भविष्य में तुमने अपनी दुष्टता न छोड़ी तो मैं आचार्य से निवेदन कर दूँगा और तुम्हें इसका उचित दण्ड भोगना पड़ेगा ।’

‘दण्ड, मेरा सौभाग्य है । दण्ड तो तुम्हीं दे लो हेमाङ्क ! आचार्य को क्यों कष्ट देते हो । मेरा अपराध क्या है ? यही न कि मैं तुम्हारी इस मनमोहक मूर्ति का उपासक हूँ, तुम्हारे सौन्दर्य में भगवान के सत्य स्वरूप को देखता हूँ, तुम्हारे दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल हुआ मानता हूँ ! तुम्हारे अलौकिक रूप को अंकित करने में मुझे आनन्द की प्राप्ति होती है । मेरी कविताएँ सरस हो उठती हैं । मुझ पर इतना क्रोध ! तुम तो न्याय-शास्त्र के विद्यार्थी हो फिर मेरे प्रति इतना अन्याय क्यों ? मैंने तुम्हारे सौन्दर्य को अपने नेत्रों का आधार बनाया है, यही तो अपराध है ?

‘तुम्हारे जैसे वाचाल और प्रलापी से अधिक बोलना अपना

ही अपमान है। तुम अपना अपराध भी स्वीकार नहीं करते, दुरात्मा.....' कहता हुआ हेमाङ्क छात्रों के समूह में जा मिला। अनेकों छात्रों ने उसके रक्ताभ मुखमण्डल को, फड़कते हुए अधरों को साश्चर्य देखा। कुछ विद्यार्थियों के मुख पर हास्य की रेखाएँ प्रकट हो गईं थी। हेमाङ्क लज्जित-सा एक ओर चला गया, नत दृष्टि, मौन।

नालन्दा विश्व-विद्यालय का प्रज्ञाण देश-देशों से आये हुए छात्रों से भरा था। नाना शास्त्रों के पठन-पाठन का क्रम चल रहा था। न्याय-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य अमृतप्रभ अपने आसन से छात्रों के सम्मुख किसी समीचीन विषय की व्याख्या कर रहे थे। एक ओर साहित्य-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् मुनि शशिभद्र गंभीर वाणी में साहित्य के अङ्ग प्रत्यङ्गों पर प्रकाश डाल रहे थे। तन्त्र-शास्त्र, आयुर्वेद, दर्शन, सांख्य, ज्योतिष, संगीत, चित्रकला इत्यादि सभी विद्याओं के ख्याति-प्राप्त पंडित अपने-अपने आसनों से अपने विषयों का प्रतिपादन कर रहे थे। ये आचार्यगण विभिन्न विद्याओं के आधार-भूत स्तंभ थे। उन के तेज के प्रभाव से छात्रों के हृदय में उनके प्रति भाँक्त का स्त्रोत उमड़ा पड़ता था। अभिवादन के समय उनके भस्तक पृथ्वी को स्पर्श कर लेते थे। आशीर्वाद के लिए गुरुओं के हाथ ऊपर उठते और 'आयुष्मन् भव' के वाक्यों की वर्षा हो जाती थी। वह सपूर्ण मण्डप सुगंधियों की धूम्र राशि से आच्छादित-सा था और मन्त्रोच्चारण की ध्वनि से मुखरित।

हेमाङ्क न्याय शास्त्र के विद्यार्थियों में सर्व प्रथम और कुशाग्र बुद्धि था। आचार्य की उस पर पूर्ण कृपा थी। हेमाङ्क के साथ शास्त्रार्थ करने में सभी छात्र परास्त हो जाते थे। वे उसे सर्वोपरि समझ कर सम्मान करते थे। हेमाङ्क अत्यन्त सुन्दर तथा नम्र था। उस के सुन्दर मुख की तुलना में एक भी विद्यार्थी नहीं ठहर सकता था। उसके अलौकिक सौंदर्य की प्रभा के सम्मुख कवियों की सर्वोत्तम उपमाएँ फीकी पड़ जाती थीं। यही कारण था कि साहित्य का विद्यार्थी प्रभास गुप्त, जो कवि होने के साथ चित्र-कला में भी बड़ा कुशल था, हेमाङ्क की चित्ताकर्षक मूर्ति को चित्रित किया करता था। वह उस के देवोपम रूप पर मुग्ध था। वही उसकी कल्पना का साकार दर्शन था।

परन्तु हेमाङ्क को यह अनुचित प्रतीत होता था और वह प्रभास से अनेक बार इसका निषेध भी कर चुका था। प्रभास चित्रकार था, कवि था और हेमाङ्क को देखते ही उसे इच्छा होती थी कि वह उसी क्षण उसकी सौन्दर्यमय आकृति को रेखाबद्ध करले, अपने भावों में उसे उतार ले। अन्य छात्रों को इन दोनों उपास्य और उपासक के वैमनस्य का पता चल गया था। हेमाङ्क का स्त्री-सुलभ सकोच, उस की भावभंगी, कोमल वाणी छात्रों का आलोच्य विषय बन जातो थी। हेमाङ्क क्यों लज्जित होकर अपने अंग-अंग छुपाने की चेष्टा करता है, क्यों उसके नीलोत्पल नेत्र किसी की भी दृष्टि के सम्मुख आनत हो जाते हैं ? क्यों उनमें

मृग-शावकों जैसी चंचलता है, क्यों उसकी देह लावण्यमय तथा शोभा के भार से नवनीत के समान मृदु हैं ? किन्तु उस के पाण्डित्य के सम्मुख सब मौन थे । उसकी प्रतिभा अलौकिक थी । न्याय का वह अपूर्व विद्वान था ।

केवल प्रभास ही उसके सम्मुख अधिक आने का साहस करता था और हेमाङ्क उससे दूर रहने की चेष्टा । किन्तु प्रभास का आकर्षण उसके प्रति बढ़ता ही जाता था । वह इतना धृष्ट हो चला था कि अनेक बार हेमाङ्क के मार्ग में आकर खड़ा हो जाता और हास्य उसके मुख पर उच्छङ्खल स्रोत की भाँति फूट पड़ता था ।

अभी पाठ्य क्रम समाप्त ही हुआ था । विद्यार्थीगण अपने-अपने आवास स्थानों की ओर जा रहे थे । प्रभास ने हेमाङ्क के पीछे जाकर उसका स्कंध-देश स्पर्श कर लिया । हेमाङ्क ने मुड़कर देखा, प्रभास था । उसके अधरों पर मन्द हास फूट रहा था, नेत्रों में प्रसन्नता की ज्योति थी और वचनों में विनोद भरी चुटकियाँ । उसने कहा 'ब्रह्मचारी हेमाङ्क, रुष्ट हो गए हो; ब्राहिमां—शरणागतोस्मि ! अपने कृपा-कटाक्ष से वंचित न करो । मुझें तो तुम्हारे दर्शन का मोह है ।

हेमाङ्क ने क्रोध से भृकुटियों को बलवित करते हुए कहा, 'विद्यार्थी, तुम्हारे साहस की पराकाष्ठा हो चुकी है । तुमने मुझे क्यों स्पर्श किया ? दुही, राप्रचरिप्रहीन.....मुझे यह परिहास अच्छा नहीं लगता ।'

प्रभास मुसकान की ज्योति बिखेरते हुए बोला, हेमाङ्क तुम्हारे कटु वचन भी मुझे प्रिय लगते हैं। तुम्हारे क्रोध से आरक्त मुख में मुझे उषा की लालिमा दिखाई देती है। तुम्हारी बङ्कम भृकुटियों में कामदेव के कुसुम चाप की शोभा अंकित है। तुम्हें देख कर मेरी कल्पना बोल उठती है, ब्रह्मचारी ! तुम्हारे रूप की प्रतिलिपियों से मुझे शृंगार-साहित्य की मधुर भावनाओं का आधार मिलता है। मेरे चित्रों की रेखाएं सजीव हो उठती हैं। ब्रह्मचारी हेमाङ्क, अपराध मेरा नहीं, मेरे इन नेत्रों का है। इन्हीं को दण्ड दो। इन्हीं पर अपनी भृकुटियों के चाप चढ़ाओ। अपने कटाक्षों से करदो इन्हें क्षत-विक्षत ! मैं तुम्हारी उपासना करता हूँ हेमाङ्क ! देखलो मेरा हृदय, इसमें ब्रह्मचारी हेमाङ्क की सुन्दर मूर्ति विराजमान है। यह कोई अतिशयोक्ति अलंकार नहीं, विशुद्ध सत्य है।

हेमाङ्क का मुख लज्जा से आरक्त हो उठा, उसने दूटती हुई बाणी में कहा, 'प्रभास, मैं तुम्हें अन्तिम बार सूचित करता हूँ कि यदि तुम इसी प्रकार मुझे लोँछित करते रहे तो परिणाम अचूक न होगा। तुम्हें कोई और विद्यार्थी नहीं मिलता। इस महान विद्यालय में जहाँ सहस्रों छात्र रह रहे हैं ! उन्हीं में से किसी को अपना आधार बनालो। उसी पर अपनी उपमा और अलंकारों की वर्षा करो। मुझे क्षमा करो प्रभास ! छात्रों में मैं उपहास का पात्र बन जाऊंगा। मुझ पर अनुग्रह करो।'।

प्रभास परास्त हो गया था। उसने कहा, 'उपहास का तो कोई कारण नहीं, हेमाङ्क ! मेरी उपमाएँ और अलंकार असत्य तो नहीं, पर यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो आज्ञा शिरोधार्य। मैं भविष्य में कभी तुम्हारे चित्र न बनाऊँगा और न कविता ही लिखूँगा। आज तक जितने चित्र बनाये हैं, वे यदि आज्ञा दो तो फाड़ कर फेंक दूँ, उन कविताओं को जला डालूँ जिनमें तुम्हारे सौन्दर्य का संकेत है ! आज्ञा दो ब्रह्मचारी !'

हेमाङ्क एक क्षण मौन उसकी ओर देखता रहा। उसके विजड़ित अधरों से मुख अधिक गम्भीर हो उठा था। भावों के अनेक संकेत उसके नेत्रों में अंकित होकर विलीन हो गये। अपने पीत मसृण कौशेय को जो पृथ्वी को स्पर्श कर रहा था, समेटते हुए उसने आनत दृष्टि से कहा, 'प्रभास मेरे चित्र न बनाओ, कविताएँ न लिखो, यही मेरी प्रार्थना है, मेरा अनुरोध है।' और वह अपने आश्रम की ओर चल दिया। उसकी धीर गति में भी कुछ वेग-सा था।

प्रभास जड़बत देखता रहा, चित्रखिलित-सा, जब तक हेमाङ्क उसकी दृष्टि से अन्तर्हित न हुआ। चेतना-हीन वह अपने आवास स्थल में चला आया। आज उसके मुख पर प्रसन्नता के चिह्न न थे। उसके अंगों की वह रौबन-सुलभ चंचलता लुप्त-सी हो गई थी।

अब वह हेमाङ्क से न कभी कोई वार्तालाप करता था, न उसके

निकट होकर ही निकलता था। वह प्रायः विचार-मग्न-सा रहता। उसका यह परिवर्तन छात्रों की दृष्टि में आश्चर्य का विषय बन गया। वह एकान्तप्रिय हो गया था और पथ-भ्रष्ट मृग की भाँति इतस्ततः विचरता था।

विद्यालय के छात्रों ने देखा वह प्रायः निर्मल वसन्त की चाँदनी रातों में उद्यान के पार्श्वगत उस शिलापट्टिका पर बैठ कर कुछ सोचा करता है, जैसे उसने निद्रात्याग का व्रत लिया है। जैसे वह चन्द्रमा के उज्ज्वल आकार में किसी की प्रतिच्छाया अकित देखता है और उसके नेत्र जैसे चक्रों की भाँति चन्द्रमा का अनुसरण करते हैं। उसके मुख से निकला प्रत्येक वाक्य कविता के छन्दों में गुंथा हुआ था। उसके अन्तर में रुश्न की एक ध्वनि थी। उसके मुख की दीप्ति बलात् किसी ने मानों अपहरण करली थी।

प्रातःकाल के बाल सूर्य की रक्तिम आभा से छात्रावास के पार्श्ववर्ती सरोवर के कमल-कुसुम इस प्रकार खिल उठे थे मानों किसी मानिनी नायिका का मुख मान-भंग के पश्चात् मधुर हास्य से शोभित हो उठा हो। अलियों की पंक्तियाँ उनके अङ्कों से निकल-निकल कर पंक्तिबद्ध बढ़ रही थी। ओस के बिन्दुजाल कमल-पत्रों पर छल-छला रहे थे। हंसों की कलारव ध्वनि से मानों वृत्तों की निद्रा टूट गई थी। वे अलसायै-से प्रभात वायु के झुंझोरो से भूम उठे थे। अभी अन्धकारमय लालिमा में स्पष्ट नहीं दिखते हुए भी विद्यालय के विशाल सरोवर के जल में नीली

आभा के धब्बे-से दिखाई पड़ रहे थे। कोई विद्यार्थीइ स सरो-
वर के जल को आलोडित करता हुआ आकण्ठ जल में मग्न
अवगाहन कर रहा था। उसकी घनी केशराशि मस्तक तथा
स्कंधों पर छितरा रही थी। मांसल भुजाओं पर मुक्ताकलाप
जैसे जलकण दुलके जा रहे थे। उसका मुख प्रकाश की लाब्बिमा
से रक्ताभ हो रहा था। अभी उसने आमस्तक जल में निमग्न
होकर मस्तक उठाया ही था कि वह किसी आगन्तुक की पदचाप
सुन कर अधीर हो उठा। उसने अपने वक्षस्थल को दोनों हाथों
से छिपाते हुए, सलज्ज नेत्र, सूखते हुए कण्ठ से कहा :

‘ठहरो ! ठहरो !! आगन्तुक’ और दूसरे ही क्षण उसके मुख
से निकला, ‘कौन, प्रभास, कवि प्रभास !’ उसने वस्त्रों में अपने
अंग छिपा लिए थे किन्तु उसका उन्नत वक्षस्थल अपनी गुरुता के
कारण प्रकट-सा हो गया था। उसके नेत्र पृथ्वी में गड़े जा रहे
थे, श्वास की गति फूल रही थी।

प्रभास की दृष्टि अन्धकार को बेधकर उस पर केन्द्रित हो
गई। वह एक क्षण रुका और तत्काल अपना मुख दूसरी ओर
कर लिया। वह लौटने ही को था कि इस सम्बोधन ने उसे
रोक लिया।

‘ठहरो प्रभास, मेरी एक प्रार्थना सुन जाओ।’

वह उसकी ओर अपना पृष्ठ भाग किए हुए ही बोला,

‘प्रार्थना नहीं, मैं आज्ञा सुनना चाहता हूँ। हेमाङ्क, क्या मेरे योग्य कोई सेवा है?’

हेमाङ्क अपने वस्त्र पहिन कर प्रभास के निकट आ खड़ा हुआ। उसने कहा, ‘प्रभास ! आज वह सत्य भी प्रकट हो चुका है जो तुम्हारे हृदय में भ्रम बना हुआ था। अब मेरा भेद पूर्णतया प्रकट हो चुका है। अब मेरा सम्मान, मेरी प्रतिष्ठा तुम्हारी वाणी के अधिकार में है। चाहे उसकी रक्षा करो, चाहे उसे समूल नष्ट कर दो। मेरा परिचय मुझे लज्जास्पद बना देगा। मेरा रहस्योद्घाटन मेरी समस्त आशाओं पर कुठाराघात कर देगा। तुम जानते हो, प्रभास ! विद्यालय में स्त्रियों का आना सर्वथा निषेध है। यह मेरी अन्तिम परीक्षा है; केवल छै मास शेष रह गये हैं।’

प्रभास ने गम्भीर वाणी में उत्तर दिया, ‘ब्रह्मचारी, यह सत्य तो मुझ पर उसी समय प्रकट हो चुका था जब मेरी प्रथम दृष्टि ने तुम्हारे अंगों का स्पर्श किया था। यह कलाकार का मर्मभेदी दृष्टिपात था, यह कवि का सूक्ष्म ज्ञान था जो दर्शन-मात्र से सत्य के निकट पहुँच गया था। किन्तु, मैं इतना पतित नहीं हूँ हेमाङ्क, तुम्हारा रहस्य प्रकट नहीं होगा, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।’

पर प्रभास मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया था, कहीं प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी।’

‘ब्रह्मचागी, वह ज्वाला तो पश्चाताप के शीतल जल से बुझ चुकी है। अब तो प्रायश्चित्त शेष रह गया है, वह भी तुम से आज क्षमा मांग कर किये डालता हूँ। करोगे क्षमा !

हेमाङ्क अवरुद्ध कण्ठ से बोला, ‘क्षमा, क्षमा तो मुझे करदो प्रभास ! मैंने तुम्हारा अपमान किया है। मुझे ज्ञात न था, कि तुम्हारा हृदय कितना महान् है !

प्रभास ने कहा : यह तुम्हारी उदारता है, अन्यथा मैं तो स्पष्टरूप से पातकी हूँ। मैंने तुम्हारी आज्ञा बिना, तुम्हारे निषेध पर भी, तुम्हें दुःखित करने का प्रयत्न किया है। किन्तु मैं क्या करता हेमाङ्क, तुम्हारा रूप मेरे हृदय में अंकित हो चुका है। अब भी यह चित्र मिटाने से नहीं मिटता। इसकी प्रत्येक रेखा अधिक स्पष्ट होती जाती है। इसके रंग प्रतिक्षण निखरते जाते हैं। मेरी दृष्टि के सम्मुख न आओ हेमाङ्क ! तुम्हारी रूप-माधुरी को देखकर ये आँखें अधिक विकल हो उठेंगी। मुझे आज्ञा दो, मेरे हृदय पर मेरा अधिकार नहीं है। मेरे स्वप्न अधिक स्पष्ट हो उठेंगे। वे मुझे अधिक भ्रम में डाल देंगे।’

‘प्रभास, स्वप्न तो मिथ्या भ्रम ही होते हैं। कवि की स्वर्गीय कल्पनाएँ केवल कल्पनाएँ हैं। उनके निकट होकर उन्हें प्राप्त करने की वह इच्छा नहीं करता। मुझे भूल जाने की चेष्टा करो, सदा के लिए।’ हेमाङ्क ने गम्भीरता से कहा, ‘कल्पना कवि के सम्मुख नहीं आती परंतु कवि यदि कल्पना के निकट पहुंचने का

प्रयत्न करे, दीपक शलभ के पास नहीं जाता परंतु शलभ दीपक के पास जाने के लिये विवश हो जाता है। क्षमा करो प्रभास, यह केवल दुःसाहस है। इसका परिणाम जानते हो, वह अपने ही को जला डालता है।'

किन्तु जल जाने का उसे दुःख नहीं होता ब्रह्मचारी ! तुम क्या जानों मेरे हृदय की पीड़ा ! यह वह ज्वाला है जो एक बार लगने पर बुझाई नहीं जा सकती, फिर भी मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करने की चेष्टा करूंगा। मैं तुम्हारे पथ का अवरोधक न बनूंगा, जीवन-पर्यन्त !'

हेमाङ्ग ने धीरता से कहा—'प्रभास, तुम्हारे और मेरे बीच एक इतनी ऊँची प्राचीर है जिसे हम में से कोई भी लाँघ सकने में अशक्त है। यह सांसारिक जीवन-मर्यादाओं से आवद्ध है। वह लोक-मर्यादा है। और इस बन्धन का सम्मान करना मानव जीवन का धर्म है। और भी अधिक स्पष्ट यह है कि मैं सिन्धु देश के एक सम्भ्रान्त राजकुल की कन्या हूँ और विद्याध्ययन के लिए यहाँ गुप्त वेष में रहनी हूँ। इस बार अंतिम परीक्षा के उपरान्त मुझे अपने देश लौट जाना है, जिसमें केवल छै मास शेष रह गये हैं। मेरा यह अंतिम अनुरोध है कि तुम मेरे मार्ग में बाधा न डालोगे। अब तुम जा सकते हो, प्रभास !'

'भक्त फल की इच्छा नहीं रखता, ब्रह्मचारी, वह तो भक्ति करने में ही अपना कल्याण मानता है। देवता प्रसन्न न हुआ

तो दोष देवता का नहीं, भक्त की श्रद्धा का है। मैंने तुम्हारी उपासना की है और करता रहूँगा किन्तु तुम्हारे मार्ग का बाधक बनकर नहीं, अपने ही जीवन का बाधक बन कर !' कहता हुआ प्रभास एक ओर वृक्षों के घने कुँज में चला गया और हेमाङ्क अपने आवास की ओर। दोनों ही के हृदय किसी अतुल भार से दब जा रहे थे। दोनों ही के अन्तर में ऐसी आँधी उठ रही थी जिसका प्रत्येक भाँका जैसे जीवन के मूल को ही उखाड़ कर फेंक देगा।

वै मास और शेष हैं। प्रभास के मुख से प्रायः निकल जाता है—'वह सम्भ्रन्त कुल की राजकन्या है, दूर देशवासिनी है।' प्रभास मेरे मार्ग का अवरोध न करना—यह वाक्य उसके श्रवण पुटों में प्रतिध्वनित हो उठता है। प्रभास के हृदय में हेमाङ्क की मूर्ति अधिक स्पष्ट हो जाती है। वह अपना मस्तक दोनों जानुओं के मध्य में रख कर न जाने क्या सोचने लगता है ! उस प्रातः-काल का वह अंधकार-मिश्रित क्षीण आलोक, सरोवर का कमलों से आच्छादित नील जल, हेमाङ्क की सद्यस्नात लज्जानत पीत-कीश्यावृत्त आकृति उसके सम्मुख आ जाती है और उसका हृदय पीड़ा से विकल हो उठता है। उसने कितने ही चित्र बनाये और फाड़ कर फेंक दिये। कितनी ही कवितायें लिखीं और उन पर हरिताल का चूर्ण फेर दिया।

उद्यान की शिला पट्टिका पर अपने करतल पर मस्तक झुकाये प्रभास कुछ सोच रहा था। वह सोचता रहा। रजनी का

अंधकार घनीभूत होता जा रहा था। चन्द्रबिम्ब क्षितिज के उस ओर चला गया था, केवल उसकी प्रभा का मन्द प्रकाश शेष रह गया था। प्रभास ने अपने चारों ओर देखा, घने वृक्षों की पंक्तियाँ शीतल वायु के झोंकों से सरसरा उठती थीं। चारों ओर झिल्ली-रव भङ्गुत हो रहा था। विशालय के घटिका यन्त्र पर प्रहरी ने दो आघात किये। रात्रि के स्तब्ध वातावरण में वह ध्वनि चारों ओर फैल गई।

प्रभास सिला से उठा। अपने आवास स्थल में आया। कुछ पुस्तकें एक वस्त्र के छोर में बाँधी, कुछ चित्राधारों को अपने पार्श्व में लिया और वह चल पड़ा सतर्क-सा। उसके पदचाप का शब्द तक नहीं सुनाई दे रहा था। आश्रम के सभी विद्यार्थी निद्रालीन थे। चारों ओर अंधकार केवल प्रांगण के आधार-स्तंभ पर एक कर्पूर दीपक टिमटिमा रहा था जिसका क्षीण प्रकाश छात्रों के आवास-स्थलों तक पहुँच रहा था। वह उस आवास की ओर गया, जहाँ हेमाङ्क रहता था मन्द गति से द्वार में प्रवेश किया उसने देखा हेमाङ्क प्रगाढ़ निद्रा में मग्न है। उसकी आजानु केश-राशि जटाजूट के पाश से खुल कर पृथुल भुजाओं पर अस्त-व्यस्त लिपट रही है। देह पर आवृत्त कौशेय कुछ हट गया है और वनस्थल का धवल कञ्चुक-वस्त्र किंचित प्रकट हो रहा है। प्रभास ने एक दृष्टिपात हेमाङ्क के मुख पर किया। उसके अधरों की गमित रेखा प्रकट कर रही थी मानों वह कोई स्वप्न देख रही हो। प्रभास के अपलक नेत्र उसे देख रहे थे। वह एक क्षण

ठहरा और व्याकुल-सा प्रकम्पित गति से भवन का विशाल प्राङ्गण पार करता हुआ बाहर निकल गया। छाया की भँति रँगता विद्यालय के द्वार पर आया। प्रहरीयों और उद्यान रक्षक की दृष्टि से बचता वह घने कुञ्जों से निकल कर विद्यालय की परिधि तक पहुँच गया। परिधि की उन्नत प्राचीर को एक बार देखा, कुछ अनुमान किया। फिर एक वृक्ष-मूल के सहारे प्राचीर पर चढ़ गया और दूसरे ही क्षण कूद कर वह परिधि से बाहर निकल चुका था। वृक्षों के घने अंधकार में वह न जाने कहाँ, किस दिशा में चला गया। रात्रि ढल चुकी थी। प्रभात के पीले बादल क्षितिज के अंक में चित्रित होने लगे थे।

प्रातःकाल नालंदा विश्व विद्यालय में यह समाचार चारों ओर फैल गया कि साहित्य का उत्कट विद्वान् विद्यार्थी कवि प्रभास गुप्त विद्यालय छोड़ कर चला गया है। बिना अनुमति के, बिना किसी सूचना के वह कहाँ गया, क्यों गया और बिना परिज्ञा दिये, जब वह उसकी अन्तिम परिज्ञा थी! यह सभी को आश्चर्य में डाले हुए था। किसी ने कहा वह विचिन्त हो गया था, किसी ने कहा वह आन्तरिक पीड़ा से आहत था, किसी ने कहा वह स्वेच्छाचारी था। विद्यालय ने एक विद्वान् छात्र की क्षति का अनुभव किया।

केवल हेमाङ्क मौन था। वह प्रभास का प्रसंग आते ही उठ कर एक ओर चला जाता। उसका आँखें आर्द्र हो उठतीं। दीर्घ निःश्वास के साथ वह कह उठता—यह तुम्हारी अन्तिम परिज्ञा

थी, प्रभास ! यदि छै मास निकल जाने देते ! कवि ! तुम कल्पनाओं में खो गये, संसार कल्पना नहीं, सत्य है ।'

स मा प्त
